श्री अरविन्द कर्मधारा

जनवरी - फ़रवरी 2024

श्रीअरविन्द आश्रम
दिल्ली शाखा का मुखपत्र
(जनवरी - फ़रवरी 2024)
अंक - 1
संस्थापक
श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फकीर'
सम्पादन - अपर्णा रॉय
विशेष परामर्शसमिति
सुश्री तारा जौहर, विजया भारती
ऑनलाइन पब्लिकेशन
ऑफ
श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली शाखा
(निःशुल्क उपलब्ध)
कृपया सब्सक्राइब करें-
saakarmdhara@rediffmail.com
कार्यालय
श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली-शाखा
श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016
दूरभाषः 26567863, 26524810
आश्रम वैबसाइट
(www.sriaurobindoashram.net)

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

प्रार्थना और ध्यान

4 जुलाई , 1914.

हे परम विजयिनी शक्ति !

हे पवित्रता, सुन्दरता एवं उत्कृष्ट प्रेम की विधात्री शक्ति! कृपा कर कि यह मेरा समूचा अस्तित्व, यह देह सत्ता अपनी एकनिष्ठ शुद्ध-भावना से पुहँच सके तेरे समीप, और स्वयं को एक विनम्र एवं समर्पित भावना से सौंप दे तेरे हाथों में ।

यद्यपि यह नहीं हुई है अभी तक तैयार,
अभी नहीं हुई है अधिक कुशल एवं परिपक्व तेरी अभिव्यक्ति के लिए,
किन्तु इस दृढ़ निश्चय के साथ कि एक दिन तू अवश्य ही निष्पन्न करेगी वह अपेक्षित चमत्कार,
और प्रकट होगी अपने पूर्ण ऐश्वर्य के साथ हमारे समक्ष।
हम तेरी ओर उन्मुख होकर मौन भावना से,
तुझे निवेदित करते हैं अपने नमस्कार।
हे प्रेम की परम शक्ति! तू विशाल एवं अद्भुत है
सर्व पदार्थों पर तू जगमगा रही है, तेरी सिद्धि का मुहुर्त्त समीप है
और समस्त प्रकृति एक महत्तर एकाग्रता में निमग्न है।

प्रार्थना और ध्यान
(अनुः विमला गुप्ता)

विषय-सूची

- सम्पादकीय 5
- केवल भगवान में अपना सहारा ढूंढो! 10
- माता जी 10
- सही पथ 11
- माता जी 12
- अनुशासन 13
- दोष त्रुटियां 14
- क्या श्री अरविन्द 'नये' हैं? 15
- दिव्य माता 22
- पूर्णयोग की ध्यान-साधना 23
- श्री अरविन्द एवं माँ की रचनाओं का अध्ययन 27
- कवितायें 29
- क्या भारत सभ्य है? - 2 31
- सावित्री प्रतीकात्मक उषापर्व 1 सर्ग 2 38
- अनागत के पथ पर 40
- आश्रम-गतिविधियाँ 46

सम्पादकीय

प्रिय पाठकों ,

श्रीमाँ ने कहा है, 'मैं सदा तुम्हारे पास हूँ' हमें इस केवल इस पात्रता को विकसित करना है कि हम श्रीमाँ की इस निकटता का अहसास कर सकें, इस अनुभूति को पा सकें। इस दृष्टि से भी श्रीमाँ का ही वचन हमारे लिए सहायक हो सकता है और वह है --

'सत्ता में भागवत उपस्थिति का पहला चिन्ह है "शांति", हमें प्रतिदिन कम से कम दो बार नीरवता प्राप्त करने का अभ्यास करना चाहिए, परंतु वह सच्ची नीरवता होनी चाहिए, केवल बातचीत बंद करना नहीं । जब भी हमें कोई बेचैनी हो तो श्रीमाँ कहती हैं कि तुम्हें बाहर आवाज किए बिना, साथ ही मेरे बारे में सोचते हुए, अपने अंदर बोलते हुए, यह दोहराना चाहिए- 'शांति-शांति' हे मेरे हृदय!

श्रीमाँ कहती हैं, इसे अगर तुम लगातार करते रहो तो परिणाम से तुम्हें खुशी होगी। शांति एक ऐसी निश्चल नीरवता है जो बहुत सकारात्मक है, इसके प्रभाव से प्रज्ञा की तरंग शांत आनंद बन जाती है। एक अर्थ में यह तमस और शांति एक दूसरे के चित और पट यानि प्रतिरूप हैं। उच्चतर प्रकृति शांति में आराम पाती है और निम्नतर उस आराम को ऊर्जा के छितराव में पाने का प्रयास करती है, फलस्वरूप वह अवचेतना यानी तमस में जा लौटती है। उच्चतर आध्यात्मिक चेतना की शांति, शक्ति, प्रकाश, आनंद सभी ऊपर परदे के पीछे विद्यमान हैं। और उनके अवतरण के लिए उत्तम अवस्थाएं हैं कि हम अपने मन को शांत रखें, साथ ही उतरते हुए प्रभाव के प्रति समर्पण की भावना रखें।' इस शांति और समर्पण की एवस्था में हमारे अंदर स्वाभाविक रूप से एक अद्भुत सजगता और सचेतनता का विकास होने लगता है। जो अपने चतुर्दिक वातावरण में होने वाली किसी भी आहट का वो चाहे स्थूल या सूक्ष्मतम स्तर पर ही क्यों न हो हमारे अंतर में एक जगरूकता के तहत हमें अनुभव करा देती है। अवशयकता है इस सजगता की, इसे हमें विकसित करना ही होगा।

कहते हैं ---

जापान में कोई दो सौ वर्ष पहले एक बहुत अद्भुत संन्यासी हुआ था। उस संन्यासी की एक ही शिक्षा थी कि : जागो! नींद छोड़ दो।

उस संन्यासी की खबर जापान के सम्राट को मिली। सम्राट जवान था, अभी नया नया राजगद्दी पर बैठा था। उसने उस फकीर को बुलाया और उस फकीर से प्रार्थना की, कि मैं भी जागना चाहता हूँ। क्या मुझे जागना सिखा सकते हैं ?

उस फकीर ने कहा, सिखा सकता हूँ,लेकिन राजमहल में नहीं, मेरे झोपड़े पर आना पड़ेगा!

और कितने दिन में सीख पाएंगे, इसका कोई निश्चय नहीं है। यह आदमी की तीव्रता पर निर्भर करता है; एक-एक आदमी के असंतोष पर निर्भर करता है कि वह कितना प्यासा है, तुम्हारी प्यास कितनी है; तुम्हारी अतृप्ति कितनी है; उस मात्रा में निर्भर होगा कि तुम कितनी जल्दी सीख सकते हो।

और मेरी शर्त है कि बीच से वापिस आने नहीं दूंगा; अगर सीखना हो तो पूरी तैयारी करके आना। और साथ में यह भी बता दूं कि मेरे रास्ते अपने ढ़ंग के हैं। तुम यह मत कहना कि यह मुझसे क्या करवा रहे हो, यह क्या सिखा रहे हो, मेरे अपने ढ़ंग हैं सिखाने के !

राजा राजी हो गया और उस फकीर के आश्रम पहुँच गया। दूसरे दिन सुबह उठते ही उस फकीर ने कहा कि आज से तुम्हारा पहला पाठ शुरू होता है। पहला पाठ यह है कि मैं दिन में किसी भी समय तुम्हारे ऊपर लकड़ी की नकली तलवार से हमला करूंगा..., तुम किताब पढ़ रहे हो, मैं पीछे से आकर नकली तलवार से तुम्हारे ऊपर हमला कर दूंगा। तुम झाड़ू लगा रहे हो, मैं पीछे से आकर हमला कर दूंगा, तुम खाना खा रहे हो, मैं हमला कर दूंगा। दिन भर होश से रहना! किसी भी वक्त हमला हो सकता है. सावधान रहना! अलर्ट रहना! किसी भी वक्त मेरी तलवार-लकड़ी की तलवार -- तुम्हें चोट पहुंचा सकती है।

हैरान राजकुमार ने सोचा कि मुझे तो जागरण शिक्षा के लिए बुलाया गया था....? और यह क्या करवाया जा रहा है ? मैं कोई तलवारबाजी सीखने नहीं आया हूं।

लेकिन गुरु ने पहले ही कह दिया था कि इस मामले में तुम कुछ पूछताछ नहीं कर सकोगे। मजबूरी थी। शिक्षा शुरू हो गई, पाठ शुरू हो गया। आठ दिन में ही उस राजकुमार की हड्डी-पसली सब दर्द देने लगी,हाथ-पैर सब दुखने लगे। जगह-जगह से चोट! किताब पढ़ रहे हैं, हमला हो गया। घूमने निकला है, हमला हो गया। दिन में दस पच्चीस बार कहीं से भी हमला हो जाता, लेकिन आठ दिन में ही उसे पता चला कि धीरे-धीरे एक नये प्रकार का होश, एक जागृति उसके भीतर पैदा हो रही है। वह पूरे वक्त अलर्ट रहने लगा, सावधान रहने लगा। कभी भी हमला हो सकता है! किताब पढ़ रहा है, तो भी उसके चित्त का एक कोना जागा हुआ है कि कहीं हमला न हो जाएं! तीन महीने पूरे होते-होते, किसी भी तरह का हमला हो, वह रक्षा करने में समर्थ हो गया। उसकी ढाल ऊपर उठ जाती। पीछे से भी गुरु आए,तो भी ढाल पीछे उठ जाती और हमला सम्हल जाता। तीन महीने बाद उसे चोट पहुंचाना मुश्किल हो गया। कितना ही आकस्मिक,कितना ही अनजान हमला हो, वह रक्षा करने लगा। चित्त राजी हो गया, चित्त सजग हो गया ।

उसके गुरू ने कहा कि पहला पाठ पूरा हो गया; कल से दूसरा पाठ शुरू होगा। दूसरा पाठ यह है कि अब तक मैं जागते में हमला करता था, कल से नींद में भी हमला होगा, सम्हल कर सोना!

उस राजकुमार ने कहा, गजब करते हैं आप! कमाल करते हैं! जागने तक गनीमत थी, मैं होश में था, किसी तरह बचा लेता था। लेकिन नींद में तो बेहोश रहूंगा!

गुरू ने कहा, घबड़ाओं मत; मुसीबत नींद में भी होश को पैदा कर देती है। संकट, क्राइसिस नींद में भी सावधानी को जन्म दे देती है। उस ने कहा, फिकर मत करो। तुम नींद में भी होश रखने की कोशिश करना।

फिर लकड़ी की तलवार से नींद में हमले शुरू हो गए। रात में आठ-दस दफा कभी भी चोट पड़ जाती । एक दिन, दो दिन,आठ-दस दिन बीतते फिर हड्डी-पसली दर्द करने लगी। लेकिन तीन महीने पूरे होते-होते राजकुमार ने पाया कि वह सन्यासी ठीक कहता है। नींद में भी होश जागने लगा। सोया रहता, और भीतर कोई जागता भी रहता। स्मरण रखता कि हमला हो सकता है! रात में नींद में भी ढाल को पकड़े रहता। तीन महीने पूरे होते-होते गुरू का आगमन, उसके कदम की धीमी सी अवाज भी उसे चौंका देती और वह ढाल से रक्षा कर लेता। तीन महीने पूरे होने पर नींद में भी हमला करना मुश्किल हो गया। अब वह बहुत प्रसन्न था। एक नये तरह की ताजगी उसे अनुभव हो रही थी। नींद में भी होश था। और कुछ नये अनुभव उसे हुए।

इस प्रकार जितना-जितना जागना बढ़ता गया, उतने-उतने विचार कम होते गए, विचार नींद का हिस्सा है, जितना सोया हुआ आदमी, उतने ज्यादा विचार उसके भीतर चक्कर काटते हैं। जितना जागा हुआ आदमी, भीतर से उतनी नीरवता और मौन आना शुरू हो जाता है, विचार बंद हो जाते हैं ।

पहले तीन महीने में उसे स्पष्ट दिखाई पड़ा था कि धीरे-धीरे विचार कम होते गए, कम होते गए, फिर धीरे-धीरे विचार समाप्त हो गए। सिर्फ सावधानी रह गई, होश रह गया,सजगता रह गई। दो चीजें एक साथ कभी नहीं रह सकती; या तो विचार रहता है, या होश रहता है। विचार आया तो होश गया। जैसे बादल घिर जाएं तो सूरज ढँक जाता है, बादल हट जाएं तो सूरज प्रकट हो जाता है। विचार मनुष्य के मन को बादलों की तरह घेरे हुए हैं। विचार घेर लेते हैं, होश दब जाता है। विचार हट जाते हैं तो होश प्रकट हो जाता है।

पहले तीन महीने में उसे अनुभव हुआ था कि विचार क्षीण हो गए, कम हो गए. दूसरे तीन महीने में एक और नया अनुभव हुआ...। रात में जैसे-जैसे होश बढ़ता गया, वैसे-वैसे सपने कम होते गए।

तीन महीने पूरे होते-होते जागरण रात में भी बना रहने लगा, तो सपने बिल्कुल विलीन हो गए, नींद स्वप्नशून्य हो गई। दिन विचार शून्य हो जाए,रात स्वप्नशून्य हो गयी तो चेतना जागी।

तीन महीने पूरे होने पर उसके गुरु ने कहा, दूसरा पाठ पूरा हो गया, उस राजकुमार ने कहा, तीसरा पाठ क्या हो सकता है ? जागने का पाठ भी पूरा हो गया, नींद का पाठ भी पूरा हो गया।

गुरु ने कहा, अब असली पाठ शुरू होगा। कल से मैं असली तलवार से हमला करूंगा...। अब तक तो लकड़ी की तलवार थी. उस राजकुमार ने कहा, आप क्या कह रहे हैं? लकड़ी की तलवार तक गनीमत थी.....,चूक भी जाता था तो भी कोई खतरा नहीं था, अब असली तलवार...! गुरू ने कहा कि जितना चैलेंज, जितनी बड़ी चुनौती चेतना के लिए खड़ी की जाए, चेतना उतनी ही जागती है। जितनी चुनौती हो चेतना के लिए, चेतना उतनी सजग होती है। तुम घबराओ मत ।असली तलवार तुम्हें और गहराईयों तक जगा देगी।

दूसरे दिन सुबह से असली तलवार से हमला शुरू हो गया। सोच सकते हैं आप! असली तलवार का ख्याल ने ही उसकी सारी चेतना की निद्रा को तोड़ दिया। भीतर तक, प्राणों के अंतस तक वह तलवार का स्मरण व्याप्त हो गया। तीन महीने में गुरू एक भी चोट नहीं पहुंचा सका

असली तलवार से। लकड़ी की तलवार की उतनी चुनौती न थी। असली तलवार की चुनौती अंतिम थी। एक बार चूक जाए तो जीवन समाप्त...! तीन महीने में एक भी चोट नहीं पहुंचाई जा सकी, और तीन महीने में उस युवक राजकुमार को इतनी शांति, इतने आनंद, इतने प्रकाश का अनुभव हुआ कि उसका जीवन एक नये नृत्य में, एक नये लोक में प्रवेश करने लगा। अब आखिरी दिन आ गया तीसरे पाठ का, और गुरू ने कहा कि कल तुम्हारी विदा हो जाएगी । तुम उत्तीर्ण हो गए, तुम जाग गए...!

उस युवक ने गुरू के चरणों में सिर रख दिया। उसने कहा, मैं जाग गया हूं और अब मुझे पता चला कि मैं कितना सोया हुआ था!

जो आदमी जीवन भर बीमार रहा हो, वह धीरे-धीरे भूल ही जाता है कि मैं बीमार हूं। जब वह स्वस्थ होता है तभी पता चलता है कि मैं कितना बीमार था।

जो आदमी जीवन भर सोया रहा है ..., और हम सब ही सोए रहे हैं; हमें पता भी नहीं चलता कि ओह! यह सारा जीवन एक नींद थी !

जब सोया हुआ था तो जिसे मैंने प्रेम समझा था, जाग कर मैंने पाया वह असत्य था, वह प्रेम नहीं था। जब मैं सोया हुआ था तो जिसे मैंने प्रकाश समझा, जाग कर पाया कि वह अंधकार से भी बदतर अंधकार था, वह प्रकाश था ही नहीं। जब मैं सोया हुआ था तो जिसे मैंने जीवन समझा था, जाग कर मैंने पाया वह तो मृत्यु थी, जीवन तो यह है।

उस राजकुमार ने गुरू चरणों में सिर रख दिया और कहा कि अब मैं जान रहा हूं कि जीवन क्या है. कल क्या मेरी शिक्षा पूरी हो जाएगी ?

गुरू ने कहा, कल सुबह मैं तुम्हें विदा कर दूंगा।

सांझ की बात है, एक वृक्ष के नीचे बैठ कर गुरू किताब पढ़ रहा है और कोई तीन सौ फीट दूर वह युवक बैठा हुआ है। कल सुबह वह विदा हो जाएगा। इस छोटी सी कुटी में, इस गुरू के पास, उसने जीवन की संपदा पा ली है, तभी अचानक उसे ख़याल आया , यह बूढ़ा नौ महीने से मेरे पीछे पड़ा हुआ है; जागने-जगाने, जागना-जागना, सावधान-सावधान। यह बूढ़ा खुद भी इतना सावधान है या नहीं ? आज मैं भी इस पर उठ कर हमला करके क्यों न देखूं! कल तो मुझे विदा हो जाना है। मैं भी तलवार ऊठाऊं इस बूढ़े पर, हमला करके पीछे से देखूं, यह खुद भी सावधान है या नहीं ?

उसने अभी इतना सोचा ही था कि वह बूढ़ा वहाँ दूर से चिल्लाया , नहीं-नहीं, ऐसा मत करना. मैं बूढ़ा आदमी हूँ, भूल कर भी ऐसा मत करना।

वह युवक अवाक रह गया! उसने तो सिर्फ सोचा ही था, उसने कहा मैंने अभी कुछ किया नहीं, सिर्फ सोचा है!

गुरू ने कहा, जब मन बिल्कुल शांत हो जाता है, तो दूसरे के विचारों की पग-ध्वनि भी सुनाई पड़ने लगती है।

जब मन बिल्कुल मौन हो जाता है, तो दूसरे के मन में चलते हुए विचारों का दर्शन भी शुरू हो जाता है।

जब कोई बिल्कुल शांत हो जाता है, तब सारे जगत में, सारे जीवन में चलते हुए स्पंदन भी उसे अनुभव होने लगते हैं।

"इतनी ही शांति में प्रभु चेतना का अनुभव अवतरित होता है।"

(साभार - Ramakaant Sharrma)

यह कहानी हमें प्रेरणा देती है कि हम अपने अंदर इस पूर्ण सजगता के द्वारा हमारी गंभीरतम अभीप्सा तथा अनिवार्य लक्ष्य के प्रति स्वयं को सचेतन बनाएं।

29 फरवरी 1956 की घटना का वर्णन करते हुए श्रीमाँ ने कहा था ...,

"आज की शाम ठोस और भौतिक भागवत उपस्थित तुम्हारे बीच उपस्थित थी, मेरा आकार जीवंत स्वर्ण का था जो विश्व से बड़ा था और मैं एक विशाल और ठोस सोने के दरवाजे के सामने खड़ी थी, जो जगत को भगवान से अलग करता था। जैसे ही मैंने दरवाजे की ओर देखा मैंने चेतना की एक ही गति में जाना और संकल्प किया कि "समय आ गया है" और दोनों हाथों से एक बहुत बड़े सोने के हथौड़े को उठाकर मैंने एक प्रहार किया, दरवाजे पर एक ही प्रहार किया और दरवाजा चूर-चूर हो गया। तब धरती पर अति मानसिक 'प्रकाश', 'शक्ति' और 'चेतना' आबाध गति से बह निकली।"

- श्रीमातृवाणी,खण्ड 15,पृष्ठ 15-16

माँ हमसे कहती हैं - ' हम उन दिव्य मुहूर्तों में से एक में हैं जब पुरानी नीवें हिल जाती हैं और बहुत अस्त-व्यस्ता होती है ; लेकिन जो आगे छलांग लगाना चाहते हैं उनके लिए यह एक अद्भुत अवसर है, प्रगति की संभावना आपवादिक रूप से बहुत अधिक है। क्या तुम उनमें से ना होगे जो इसका लाभ उठाएंगे?'

जवाब हमें देना है...।

वर्ष 2024 आप सभी के लिए मंगलमय और सर्वांगीण प्रगति का प्रतीक हो इस कामना के साथ इस वर्ष की 'श्री अरविंद कर्मधारा' पत्रिका का प्रथम अंक आपके लिए प्रस्तुत है, श्रीमाँ के उपरोक्त प्रश्न के उत्तर के लिए हम सभी स्वयं का मंथन करें, मनन करें और संकल्प करें इसी शुभेच्छा के साथ ...

-- अपर्णा

केवल भगवान में अपना सहारा ढूंढो!

अपने लिए सहारा, सहायता और सुविधा पाने के लिए भगवान के अतिरिक्त किसी से भी अपेक्षा मत करो, यह अनिवार्य बात है। मैं कभी भी ऐसे व्यक्ति से नहीं मिली जिसने कभी अपने हेतु की पूर्ति के लिए किसी व्यक्ति से सहायता मांगी हो और धोखा हो न खाया हो... वह हतप्रभ हो जाता है, टूट जाता है, स्वयं अपना सहारा भी गंवा बैठता है और तब कहता है 'जीवन बहुत कठिन है।' वस्तुतः जीवन इतना कठिन नहीं है सिर्फ व्यक्ति को यह जानना चाहिए कि कठिनाई के समय उसे क्या करना है, कैसे करना है और वह क्या कर रहा है?

भगवान के अतिरिक्त किसी दूसरे में अपना सहारा, अपनी सहायता कभी मत ढूंढो केवल भगवान में ढूंढो। तुम्हारी सभी सही आवश्यकताएं भगवान के द्वारा पूरी हो सकती हैं, तुम्हारी सभी दुर्बलताओं को भगवान सह सकते हैं और केवल वे ही सहायता कर सकते है। वे प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति करने में सर्वदा सक्षम हैं। यदि तुम उनसे सहायता, सहयोग और सहारा चाहते हो तो वे तुम्हारी आवश्यकतानुसार तुम्हें प्रदान करेंगे और यदि किसी दूसरे से अपेक्षा करोगे तो किसी दिन नाक के बल नीचे गिरोगे और यह बात तुम्हें हर समय तकलीफ देती रहेगी, कभी-कभी तो बहुत अधिक तकलीफ देगी।

माता जी

उदाहरणः हमारा देश एक देवी है - भारत माता - उसके तीन स्वरूप हैं :

- भारत आत्मा
- भारत शक्ति अर्थात् धर्म और आध्यात्मिकता जो जीवन को स्वीकारती है एवं अंतरात्मा तथा भौतिक स्वरूप का समन्वय कराती है।
- भारत जगत-गुरु – अर्थात् विश्व का नेता एंव पथ-प्रदर्शक भारत के गौरव के पुनर्जन्म में संसिद्ध एवं साक्षात होने दो।

सही पथ

जो लोग सच्चे और सही पथ का अनुसरण करना चाहते हैं वे स्वाभाविक ही दुर्भाग्य की सभी शक्तियों के प्रति खुल जाते हैं। लोग तुम्हारे विषय में जो मूर्खतापूर्ण वैषम्य भाव से बातें करते हैं यदि तुम उनसे हतोत्साह, उद्विग्न एवं विचलित हो जाते हो तो तुम अपने पथ पर आगे अग्रसर नहीं हो पाओगे। ये विरोधी बाधक तत्व तुम्हारे पास इसलिए नहीं आते कि तुम अयोग्य हो या भाग्यहीन हो बल्कि इसलिए आते हैं कि भगवान की परम चेतना और कृपा, तुम्हारा संकल्प कितना निष्कपट और दृढ़ है, तुम राह में आने वाली कठिनाइयों का सामना करने के लिए पर्याप्त बलवान और अविचलित हो या नही,। वस्तुतः ये सब बाधक तत्व तुम्हारी दृढ़ता, संकल्प और निर्णय की कसौटी को परखने के उपकरण हैं।

यदि कोई तुम्हारा उपहास करता है कठोर बातें करता है तो अपने अंदर झांको और अवलोकन करो कि वह कौन सी दुर्बलता है, या अपूर्णता है जिसने ऐसे बाधक तत्वों को भीतर घुसने दिया। इसलिए तुम निराश, कुपित और हतोत्साहित मत होओ और न यह सोचो कि लोग तुम्हारा उचित मूल्य नहीं आँकते या तुम्हारी प्रशंसा नहीं करते इसके विपरीत तुम्हें ''भागवत कृपा' को धन्यवाद देना चाहिए कि जिन दुर्बलताओं एवं अपूर्णताओं को तुम्हें जीतना है उन्हें परखने का मौका तुम्हें भागवत कृपा से प्राप्त हुआ।

इसके साथ ही यदि तुम योग्य और सक्षम बनकर पथ का अनुसरण करना चाहते हो तो तुम्हें यह प्रत्याशा अपने अंदर से दूर करनी होगी कि लोग तुम्हारी प्रशंसा और सम्मान करें। तुम्हें इस सच्चे पथ पर इसलिए आगे बढ़ना है कि सभी तुम्हारी प्रशंसा और सम्मान करें। तुम्हें इस सच्चे पथ पर इसलिए आगे बढ़ना है कि यही तुम्हारी सत्ता का सत्य है, अस्तित्व की अनिवार्य आवश्यकता है। दूसरे लोगों का कथन तुम्हारे लिए किसी महत्व का नहीं। सामान्य व्यक्तियों की कहासुनी से जितने दूर तुम अपनी चेतना को अछूता रख सकोगे उतना ही तुम्हारा विकास होगा। तुम्हारी सत्ता का रूपांतर होगा और तुम अपने पथ को अधिकाधिक देख परख सकोगे, उस पर चढ़ सकोगे। तुम्हारा सच्चा लक्ष्य भागवत कृपा के अनुसरण में है क्योंकि इसके अतिरिक्त तुम कुछ और नहीं कर सकते, वही तुम्हारे होने का एकमेव कारण है। तुम्हारे प्रयास को प्रकाश में उन्नत होना है। जब ऐसी प्रतीति सुदृढ़ जो जाए कि तुम्हारे अस्तित्व का प्रमुख लक्ष्य भागवत कृपा का अनुसरण करना है तब तुम निश्चय ही अपनी सत्ता के सच्चे लक्ष्य और कारण को उपलब्ध करने में सक्षम हो सकोगे और अपने पथ पर अधिकाधिक अग्रसर होने लगोगे।

माता जी

श्री अरविंद द्वारा साधकों को दिया गया एक प्रमुख मंत्र "सदैव स्वयं को मेरी ओर खुला रखो" यह सर्वदा मन में उच्चरित रहे :-

ॐ श्रीअरविन्द माँ मीरा
मेरे मन को अपने प्रकाश की ओर खोलो,
मेरे हृदय को अपने प्रेम की ओर खोलो,
मेरे प्राण को अपनी शक्ति की ओर खोलो,
मैं प्रत्येक चीज़ में उस प्रभु के दर्शन कर सकूं।

Om Sri Aurobindo Ma Mira
Open my mind towards thy Light
Open my heart towards Thy Love,
Open Life towards thy Power,
In everything may I See the Divine.

किसी भी कठिनाई के कारण स्वयं को विचलित एवं निरुत्साहित मत होने दो वरन नीरव एवं सरल भाव से स्वयं को माता जी की शक्ति की ओर खोलो और उसे अपने अंदर क्रिया करने दो। माता जी की शक्ति केवल ऊपरी सत्ता के शिखर पर ही नहीं है वह तुम्हारे साथ और तुम्हारे पास है। जब तुम्हारी प्रकृति उसे कार्य करने की सहमति देगी, उस समय वह अपनी क्रिया करने के लिए सदैव तत्पर रहती है।

जिस क्षण से तुम संतुष्ट हो जाते हो अभीप्सा करना छोड़ देते ही उसी क्षण से तुम्हारा ह्रास शुरू हो जाता है क्योंकि जीवन गतिशील है, एक अनवरत प्रयास है, निरंतर आगे बढ़ना है, भावी सिद्धियों की ओर चढ़ाई है। आराम या निष्क्रियता से अधिक भयंकर और कुछ नहीं है। यह समस्त जीवन एक साधना है उसे विभिन्न टुकड़ों में यह कहकर नहीं बांटा जा सकता है कि यह कार्य साधना है और अन्य सब कुछ मात्र एक क्रिया-कलाप है। तुम्हारी प्रत्येक गतिविधि, प्रत्येक कार्य व्यापार यहां तक कि भोजन एवं निंद्रा भी साधना के ही अंश होने चाहिए।

योग का दबाव पड़ने पर जो दबी ढकी इच्छाएं एवं कठिनाइयाँ ऊपर उभर आती हैं उनका तटस्थता के द्वारा सहज भाव से सामना करना चाहिए और यह समझ लेना चाहिए कि वे विजातीय एवं बाह्य प्रकृति के तात्कालिक तत्व हैं जिससे तुम्हारा कोई सरोकार नहीं है अथवा उन्हें प्रार्थना भाव से भगवान के सम्मुख प्रस्तुत कर देना चाहिए, जिससे भगवान उनका रूपांतर कर दें।

अनुशासन

कोई भी व्यक्ति आत्म- अनुशासन के बिना सफल नहीं हो सकता। एक मनुष्य बनने के लिए अनुशासन आवश्यक है। अनुशासन के बिना व्यक्ति एक पशु के समान है, एक मनुष्य होने के लिए वह केवल तभी शुरूआत कर सकता है जब वह उच्चतर एवं सत्यतर जीवन की अभीप्सा करता है और जब वह स्वयं के रूपांतर का अनुशासन स्वीकार कर लेता है और इसके लिए व्यक्ति को अपनी निम्न प्रकृति उसकी क्षुद्र आकांक्षाओं तथा आवश्यकताओं आदि पर अनुशासन के द्वारा स्वामित्व प्राप्त करना चाहिए। यह कहा जा सकता है कि पूर्ण अनुशासन जैसा कुछ भी हो यदि इसे दृढ़ता पूर्वक पूर्ण निष्ठा से एवं सोच-समझ कर अनुसरण किया गया है तो वह स्वंयमेव एक विचारशील सहायता है जो उसे उसके जीवन के उच्चतर लक्ष्य तक पहुंचाती है और उसे एक नए जीवन के लिए तैयार करती एवं योग्य बनाती है और तब अनुशासन शीघ्रता से अपनी भूमिका निभाता है एवं अतिमानसिक चेतना के संपर्क में लाता है। जब तक व्यक्ति अनुशासन के अनुकूल क्रियाकलाप करने में असमर्थ होता है तब तक वह जीवन में किसी उत्कृष्ट नियम एवं मूल्यों का अनुसरण करने में भी अक्षम रहता है।

समस्त दोष एवं भूल पश्चाताप के द्वारा क्षीण हो जाती हैं। जब निम्न प्रकृति 'मातृचेतना' की विशालता से संयुक्त हो जाती है तब वह समग्र रूप से रूपांतारित हो जाती है।

- श्रीमाँ

श्रीमाँ की उपस्थिति को अपने अन्तर्मन में अनुभव करना अपने अस्तित्व को महिमान्वित एवं नन्दित बनाना है। श्रीमाँ केवल एक रुपाकृति नहीं है अपितु भिन्न-भिन्न अवसरों पर अनेक रूपा हैं। इस स्थूल देह की पृष्ठभूमि में माता जी के अनेक रूप, व्यक्तित्व एवं शाक्तियां हैं। शीर्ष स्थान पर वे जन्म, संघर्ष एवं भाग्य के ऊपर खड़ी हैं।

- श्री अरविन्द

दिव्य जीवन की ओर आरोहण मनुष्य की यात्रा है, कार्यों में एक कार्य, स्वस्वीकृत एक उत्सर्ग है। यही मनुष्य का विश्व में सच्चा कर्मकांड, कार्य व्यापार है और उसके अस्तित्व का औचित्य है।

माता जी को स्मरण करो, यद्यपि भौतिक रूप से उनसे दूर हो कर भी उन्हें अपने समीप होने का अनुभव एवं अहसास करो और फिर वैसा ही करो जैसा करने के लिए तुम्हारी अन्तःसत्ता तुमसे कहती है वही माता जी की भी इच्छा होगी। तब तुम सही ढंग से उनकी और मेरी उपस्थिति का बोध करने के योग्य सिद्ध हो सकोगे तथा सुरक्षा के रूप में हमारा वातावरण अपने चहुं ओर बनाए रखने में सक्षम हो सकोगे और तब नीरवता एवं प्रकाश का एक मंडल हर कहीं तुम्हारे समीप बना रहेगा।

दोष त्रुटियां

आखिर वे कौन सी दोष त्रुटियां हैं जो हमारी सत्ता के समर्पण में व्यवधान डालते है ? जो हमें इस योग्य नहीं बनने देते कि भगवान हमारे आत्मदान को स्वीकार कर सकें। हमें अभीप्सा करनी चाहिए कि हमारे अस्तित्व की समस्त संकीर्णताएं एवं सीमाएं हम दूर कर सकें और हमें सर्वदा प्रस्तुत रहना चाहिए कि हम भगवान के कार्य के एक कुशल एवं सशक्त माध्यम बन सकें। हमें भगवान से यही प्रार्थना करनी चाहिए कि वे सही पथ दिखाएं और उसे अपने प्रकाश से भरपूर कर दें। पथ में आने वाले सभी अवरोधों को हम तोड़ दें और सभी विघ्नों पर विजय पाएं और हम अपनी सभी व्यक्तिगत असमर्थताओं, अक्षमताओं से मुक्त हो सकें। हमें आवश्यकता है बस धैर्य, साहस और शक्ति की जिससे हम भगवान के प्राकट्य हेतु अनवरत कार्यकुशल बने रहें।

व्यक्ति को सदैव ही सतर्क एवं चौकन्ना रहना चाहिए अपनी अंतर की पुकार के प्रति, जो उसे सर्वदा उत्कृष्ट जीवन के संकेत देती है जो उसके देह मन-प्राण को प्रकाश की ओर खोलकर कर्मशील बने रहने का साहस देती है। यही अन्तःप्रेरणा की वह पुकार है जो उसे आलस, प्रसाद एवं सुषुप्ति से मुक्त करती है।

केवल शांत-स्थिरता में ही सब कुछ जाना और किया जा सकता है। जो कुछ उत्तेजना और उग्रता में किया किया जाता है वह मतिभ्रंश और मूर्खता है। सत्ता में भागवत उपस्थिति का पहला चिह्न है शान्ति। हम यहां और जगहों से ज्यादा अच्छा करने के लिये और अपने-आपको अतिमानसिक भविष्य के लिये तैयार करने के लिये हैं। इसे कभी न भूलना चाहिये। मैं सबसे सच्चे, निष्कपट सद्भाव से अनुरोध करती हूं ताकि हमारा आदर्श चरितार्थ हो सके।

- श्रीमाँ

(१६-१२-१९७१)

क्या श्री अरविन्द 'नये' हैं?

(एक पत्र)

के.डी.सेठना

श्री अरविन्द द्वारा देख लेने के बाद यह पत्र पहली बार 1947 में छपा था। इसका विषय अब भी महत्त्वपूर्ण है और उसे रेखांकित किये जाने की आवश्यकता है। श्री अरविन्द ने स्वयं शरीर त्याग दिया है। 5 दिसम्बर 1950 को इस घटना के विषय में लेखक की पुस्तिका 'The Passing of Sri Aurobindo: Its Inner Significance and Consequence' (जिसका श्रीमाँ ने पूरी तरह अनुमोदन किया था) पढ़ी जा सकती है। तात्कालिक सकेन्द्रित आलोक के लिए 5 दिसम्बर के तुरन्त बाद के श्रीमाँ के सन्देशों की चर्चा की जा सकती है और कुछ समय बाद दिये गये इन दो सन्देशों की भी। एक 1951 का है- "अपने शरीर के बारे में श्री अरविन्द ने जो निर्णय लिया है, उसके लिए धरती और मनुष्यों की ग्रहणशीलता का अभाव अधिकाशंतः उत्तरदायी है। लेकिन एक बात निश्चित है कि भौतिक स्तर पर जो कुछ हुआ है, वह किसी भी तरह उनकी शिक्षा के सत्य को प्रभावित नहीं करता। जो कुछ उन्होंने कहा है, वह पूरी तरह सच है और रहेगा। समय और घटनाओं की दिशा इसे प्रचुरता से सिद्ध करेगी।" दूसरा संदेश 1953 का है- "सामूहिक चरितार्थता की घड़ी को और जल्दी ले जाने के लिए अपने शरीर में हुई सिद्धि का त्याग करते हुए श्री अरविन्द ने परम निःस्वार्थता में अपना शरीर छोड़ा है। निश्चय ही धरती अधिक उत्तरकारी होती तो यह आवश्यक न हुआ होता।" प्रस्तुत पत्र इस सिद्धि' के सार को स्पष्ट करने से सम्बन्ध है जिसका अनुसरण उस आधारभूत रूपाकार का निर्माण करता है जिसमें श्री अरविन्द की शिक्षा 'नवीन' है।

बहुधा यह घोषित किया जाता है कि पाश्चात्य जगत अपने नवीन भौतिकवाद में इस कदर तल्लीन है कि वह किसी भी प्राचीन आध्यात्मिक संदेश को नहीं सुन सकता। इसी तरह प्रतीत होता है कि पूर्वी जगत् सदैव प्राचीन आध्यात्मिकता में इतना व्यस्त है कि कोई नया आध्यात्मिक संदेश उसके दिमाग को स्पर्श ही नहीं करता।

इस अ-प्रगतिवादी प्रवृत्ति के कुछ कारण हैं। पहला कारण है - विगत की आध्यात्मिकता सचमुच ही असीम और विशाल है और इसी वजह से इसका प्रभाव अधिक होना सहज है। दूसरा कारण है - जो सभ्यताएं-जैसे कि भारतीय सभ्यता-बहुत प्राचीन हैं और अब भी अपने अतीत से जिनकी जीवन्त निरन्तरता बनी हुई है वे पीछे की ओर देखने की एकाग्र दृष्टि विकसित

कर लेती है। तीसरा कारण है - आध्यात्मिक शब्दावली का अभ्यासगत अर्थ हमारे मन पर ऐसी दीर्घकालीन शक्ति के साथ प्रभाव जमा लेता है कि उसको दिया गया नवीन स्वरूप उपेक्षित हो जाता है। मुझे आशा थी कि मुट्ठी भर लोगों से अधिक कुछ लोग अवश्य होंगे जो आध्यात्मिकता में वास्तव में, जानने के लिए जागरूक (qui vive) होंगे और इसे समझने में पर्याप्त निपुण होंगे, जबकि इसकी अनेक तरीकों से और चमत्कारपूर्ण ढंग से समझाने वाली शैली में व्याख्या की गई हो जैसा कि 'दिव्य जीवन' (The Life Divine) जैसे ग्रन्थ में हो चुका है। लेकिन यदि आप यह घोषणा करते हैं कि आपने श्री अरविन्द की अन्तर्दृष्टि को समझने के लिए रात-दिन लगाये हैं और कुछ भी नया पल्ले नहीं पड़ा है तो मैं लगभग निराश हो जाता हूँ। मैं उनके चिन्तन के नवीन संकेतों को, उनके अनुभव के मौलिक रूझानों को आपकी दृष्टि तक कैसे पहुँचाऊँगा? शायद सबसे अच्छा यह होगा कि उनकी नवीनता को प्रस्तुत करने के लिए एक ही पक्ष पर ध्यान केन्द्रित करें। यही सर्वाधिक अपूर्व, सर्वाधिक संवेदनात्मक होगा।

श्री अरविन्द नये हैं- यह कहने का अर्थ यह नहीं है कि उनके और दिवंगत ऋषियों-योगियों के बीच के अनेक सामान्य कारकों को नकारा जा रहा है। वह भारत की भगवद् विषयक विराट् अनुभूति में स्थित हैं और किसी अन्य देश की भागवत अनुभूति से वह उस सबका नेतृत्व नहीं कर सकते थे जो कि आध्यात्मिकता को उनका अपना वैयक्तिक योगदान है। वास्तव में उनके योगदान का प्रस्थान–बिन्दु प्राचीन धर्मग्रन्थों के लिए अज्ञात कोई वस्तु नहीं हैः शाश्वत और अनन्त भगवान् की सर्जनात्मक चेतना (creative Consciousness) इस भव-लीला को उत्पन्न करके और हमारे मन, प्राण-शक्ति और शरीर की शुद्धि कर एवं इन्हें प्रदीप्त कर अपने विविध रूपों में इसमें भाग ले रही है। वैष्णववाद और तन्त्रवाद में हमारी प्रकृति में भगवान् की आत्म-अभिव्यक्ति के आदर्श का सर्वाधिक खुले रूप में समर्थन किया गया था। लेकिन सर्वत्र ही एक निश्चित अपरिवर्तनीय मात्रा ही स्वीकार की गई थी जिसमें भगवान् का आत्म-प्रकाशन नहीं हो सकता था। इसीलिए सर्वाधिक बाह्य स्तर पर इहलोक के अस्तित्व में मृत्यु के सच को अन्तर्निहित स्वीकार किया गया था। मन, प्राण और शरीर की त्रिपक्षीय बनावट को जो इहलोक के अस्तित्व का निर्माण करती है, मान लिया गया था कि यह कदापि परिपूर्णता के लिए सक्षम नहीं है इसलिए कुछ समय के बाद सदैव इसे छोड़ दिया जाता है। परिपूर्णता कहीं परे निवास करती है जहाँ आत्मा को ऊपर उठना पड़ता है-या तो सदा के लिए वहाँ ठहरने के हेतु या दुःख भोग रही मानव-जाति के निमित्त कुछ समय बाद लौट आने हेतु। जन्म एक अन्तहीन सिलसिले से पलायन या उसमें स्वीकार था। दोनों ही स्थितियों में जन्म ऐसा नहीं हो सकता था जिसमें मन-प्राण-शरीर की बनावट की परम परिपूर्णता हो सके। बीमारी, क्षीणता और मरणोन्मुख बुढ़ापा सदा अपरिहार्य थे। उन हठयोगियों ने भी, जो बूढ़ी होती हुई शारीरिक तन्त्र-प्रणाली को सूक्ष्म प्राणिक ऊर्जा के द्वारा वश में करने की असाधारण शक्तियाँ रखते थे, कभी यह दावा नहीं किया - एक संभावना के रूप में भी नहीं - कि भागवत भौतिकता में शरीर पूरी तरह भागी हो सकता है जो अविनाशी चेतना और सार तत्त्व की उपस्थिति से बुढ़ापे या बीमारी या दुर्घटना के आघात से कभी नहीं मरेगा।

आप स्वीकार करेंगे कि जब तक शरीर हमारी भौतिक चेतना का विशिष्ट वाहन है, तब तक इस वाहन का पूर्णरूपेण दिव्यीकरण हुए बिना और अविनाशी दिव्य सत्ता के उपादान में परिवर्तित हुए बिना भगवान् का सम्पूर्ण आत्म-आविर्भाव नहीं हो सकता। वह अविनाशी दिव्य सत्ता है अक्षय प्रदीपन और अनश्वर आनन्द एवं शाक्ति। किसी भी तथाकथित प्राकृतिक नियम या अनिवार्यता को इस शरीर को बीमारी का दुःख भोगने, बूढ़ा होने और अन्ततः मर जाने या किसी दुर्घटना के लिए खुला होने एवं 'मूर्खतापूर्ण दुर्घटना' का शिकार होने के लिए बाध्य नहीं करना चाहिए। बीमारी और बुढ़ापा और इनके परिणामस्वरुप अथवा आकस्मिक विकट परिस्थिति के कारण मृत्यु - ये सब अदिव्यता के परिणाम हैं। इनका शरीर में वहीं स्थान है जो हमारी मानसिक एवं प्राणिक चेतना में अज्ञान, मिथ्यात्व एवं दुराव का है। इस धरती पर ईश्वरीय सत्ता वह है जिसमें मात्र मानसिक एवं प्राणिक चेतना ही नहीं अपितु शारीरिक उपकरण दिव्य में परिवर्तित हो गये हों और इसलिए वह पूर्णरूपेण प्रदीप्त, अविनाशी और असंक्राम्य उपादान है। ऐसा परिवर्तन मानसिक एवं प्राणिक चेतना में पूरी तरह कार्यान्वित नहीं हो सकता जबकि साथ-साथ शरीर में भी परिवर्तन न हो - यदि ऐसा नहीं होगा तो वे अलग-अलग बने रहेंगे और पृथ्वी पर भगवान् के प्रकटीकरण के लिए इस परिवर्तन में सहयोगी नहीं बनेंगे। क्योंकि पृथ्वी पर भगवान् के आविर्भाव के लिए सहयोग अपरिहार्य है, इसलिए शरीर की अपूर्णता सांसारिक उद्देश्यों के हेतु मानसिक एवं प्राणिक तत्त्वों के पूर्ण कार्य में बाधा डालेगी। सारांश यह कि जब तक शरीर की अपूर्णता को असाध्य स्वीकार किया जाता है, तब तक सर्वांगीण रूपान्तर के किसी योगी का कोई विज़न संभव नहीं है।

और अगर इस विषय में आप सूक्ष्म रूप से विचार करें तो आप देखेंगे कि जब तक अपूर्णता की अपरिवर्तनीय मात्रा स्वीकार की जाएगी, भगवान् एवं पार्थिव सत्ता के बीच बहुत बड़ा अन्तराल बना रहेगा। प्राचीन मनीषी कहते थे कि सब कुछ ईश्वर है। लेकिन अगर सब कुछ ईश्वर है तो हमारी पृथ्वी के समान विकासात्मक पद्धति में सब कुछ ही भागवत मूल्यों को पूर्णता से प्रकट कर सकता है। समय के कारण मनुष्य के जीवन-वृत्त में अपूर्ण की अपरिवर्तनीय मात्रा नहीं हो सकती। यदि विकास की प्रक्रिया के बावजूद इस मात्रा को स्वीकार कर लिया जाता है तो हम स्वतः ही परम सत्ता में एक विभाजन कर देते हैं - दिव्य और अदिव्य, जो दिव्य मूल्यों को पूर्णरूपेण व्यक्त नहीं कर सकता और न ही दिव्य मूल्यों में परिवर्तित किया जा सकता है। इस द्वैतवाद के संघर्ष से माया-का-भ्रम का सिद्धांत उत्पन्न होता है। जो कुछ अपूर्ण की अपरिवर्तनीय मात्रा को आकृष्ट करता है, वस्तुतः उसका अस्तित्व नहीं हो सकता - यह है विभ्रम, एक विचित्र अनस्तित्व जिसका अभी अस्तित्व प्रतीत होता है, 'एकमेव सकल एव सम्पूर्ण (Chrysolite) के जिज्ञासु को एक ही कार्य करना है, परम, परिशुद्ध शत-प्रतिशत दिव्य को चाहने वाले मनुष्य में स्थित सहज आदर्शवाद का एक ही कर्तव्य है - इस भ्रम से छुटकारा पाना और अरूप, अनाम समाधि में, निर्वाण में', निर्गुण ब्रह्म में प्रवेश करना। यदि हमें बतलाया गया है कि जगत् के तत्त्वों

में कोई अविभाज्य वस्तु विद्यमान है तो हम संसार के लिए कार्य करने का मार्ग चुन सकते हैं और संसार को मूल्यवान समझ सकते हैं क्योंकि इसमें भगवान् को अभिव्यक्त करने वाले अनेक अंग हैं लेकिन हमारे अन्तरतम में विद्यमान आत्मा सदैव असंतोष का अनुभव करेगा, अशमित, अधीर रहेगा और यह जानेगा कि आत्मा के विकास का भव्य अन्तिम लक्ष्य (Grand Terminus) यहाँ नहीं है, सर्वांगीण परिपूर्णता का घटनास्थल यह नहीं है। अन्ततः वे देश जहाँ, संसार को लीला या भगवान् की क्रीड़ा समझने के सिद्धान्तों के बावजूद, गूढ़तम आत्मा सर्वाधिक सक्रिय है, संसार को माया समझने के सिद्धान्त के प्रति समर्पण कर देंगे।

भारत में 'माया' सिद्धान्त छाया हुआ है - केवल इसलिए नहीं कि भारत ने अपना प्राचीन ओज खो दिया है बल्कि इसीलिए भी कि भारत गूढ़तम आत्मा से अदम्य रूप से प्रभावित है और पूर्णता के विचार से आविष्ट अन्तस्थ निवासी उसे सत्य नहीं मान सकता जो पूर्ण दिव्यीकरण को स्वीकार करने में अशक्त हैं। जो आध्यात्मिक जिज्ञासु हमारी प्रकृति के संघटकों में अदिव्यीकरण के उपादान को स्वीकार करता है, वह नितान्त शंकरवादी के 'संन्यास' को, नितान्त बुद्धवादी के 'त्याग' को अनावश्यक नहीं मान सकता। उस पार (Beyond) की ओर कर्षण को, अति-कॉस्मिक स्थिति के लिए जगत् के अस्वीकरण को रोका नहीं जा सकता और सचमुच ही इसका विरोध नहीं किया जाना - यदि भगवान्, पूर्णरूपेण पूर्ण हमारा लक्ष्य है। तथापि शंकर और बुद्ध भी अपनी मायावादी प्रवृत्ति के साथ जागातिक-कर्म की ओर, आत्मा की अभिव्यक्ति के किंचित् प्रयास की ओर, गुह्य दीप्ति (Secret Splendour) द्वारा हमारी प्रकृति के उपचार की ओर आकर्षित हुए थे। यहाँ भी एक मूल प्रवृत्ति है जो अंतर्जात हेतु सक्षम हो। दो मूल प्रवृत्तियाँ हैं। एक तो यहा कि अनुवर्ती मायिक निरर्थकता से युक्त हमारी प्रकृति के अंतिम अवशेष, जिसे दिव्य नहीं बनाया जा सकता, के कारण परे (Beyond) की ओर निवर्तन। दूसरी यह कि अपनी प्रकृति को, जहाँ तक संभव हो सके, प्रदीप्त करना मानों यह माया न होकर सत्य हो। इन दोनों प्रवृत्तियाँ के बीच संघर्ष जारी रहेगा। पहली प्रवृत्ति की ओर अधिकाधिक झुकाव दीखता है। इसका कारण है संसार पर स्पष्ट प्रकाश के अपूर्व फैलाव की अपेक्षा आध्यात्मिक सम्पूर्णता का स्वप्न देखने वाला हमारे अन्तःस्थत स्वप्नद्रष्टा का अलग 'परिपूर्णता' के प्रति सम्मोहन। यह संघर्ष है भारतीय आध्यात्मिक के विगत का इतिहास। यह दृष्टि है शरीर की कोशिकाओं तक के पूर्ण प्रदीपन की, शरीर की पूर्ण दिव्य बनाने की दृष्टि। क्या आप निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि ऐसी दृष्टि भूतकाल में कभी रही है? क्या आप किसी भी योगी का उदाहरण मुझे दे सकते हैं जिसने श्रीमाँ की तरह यह कहा है- "शारीरिक मृत्यु हमारे कार्यक्रम का अंग नहीं है।" क्या किसी धर्मग्रन्थ में यह कहा गया है कि पूर्णरूपेण भगवद्-अनुभूति से सम्पन्न व्यक्ति का शरीर रोग, क्षय और मृत्यु का विषय नहीं होता या इस शरीर को किसी तथाकथित प्राकृतिक नियम या आवश्यकता की प्रक्रिया के कारण त्यागने की जरूरत नहीं है। महान योगियों के बारे में कहा जाता है कि वे अपनी इच्छा से शरीर त्यागते हैं। लेकिन यह कार्य वे मृत्यु के प्रहार के पूर्वज्ञान के कारण करते हैं और वे जिस शरीर को छोड़ते हैं, वह तात्विक रूप से अविनाशी तत्त्व नहीं होता बल्कि होता है किसी न किसी बीमारी

का घर - रामकृष्ण में गले का कैंसर, विवेकानंद में दमा। विवेकानंद अपनी बीमारियों के लिए सलाह लेते थे और जिन्हें कुशल समझते थे, किसी रोग के कारण शरीर त्याग किया था। अतीत में कभी भी पूर्णरूपेण भगवदमय शरीर का कोई विज़न नहीं रहा - ऐसे शरीर का जो दुर्घटनाओं से भी उन्मुक्त हो। यदि श्री अरविन्द के द्वारा प्रस्तुत यह विज़न 'नवीन' नहीं है - क्रांतिकारी रूप से 'नवीन'- तो कृपया बतलायें कि 'नवीन' शब्द की सार्थकता क्या है?

ऐसे मूलभूत रूपान्तर की संभावना में आपको संदेह हो सकता है। आप तर्क भी कर सकते हैं कि यह वांछनीय नहीं है। लेकिन आप यह कैसे कह सकते हैं कि श्री अरविन्द जो कह रहे हैं, वह पुराना है? निश्चय ही, उनके मन में जो 'रूपान्तर' है, वह 'गुह्यवादी ने व्यावहारिक निश्चयात्मक रूप में कभी स्वप्न भी नही देखा था। भगवान की अभिव्यक्ति के हमारे सब प्रयासों के पीछे इसकी कुछ अन्तः प्रेरणा अस्पष्ट रूप से कार्यरत अवश्य रही होगी। उस धुंधली अन्तः प्रेरणा के बावजूद किसी गुह्यवादी ने रूपान्तर को अग्रभाग में रखने का वैसा साहस कभी नहीं किया जैसा श्री अरविन्द चाहते हैं। उन्होंने इसी शब्द का प्रयोग चाहे किया हो लेकिन श्रीअरविन्द ने इसे जो अर्थ प्रदान किया है, वह उनका नहीं हो सकता। ऐसा इसलिए कि श्रीअरविन्द जिसे अतिमानस (Supermind) या सत्य-चेतना (Truth-Consciousness) कहते हैं, उसका पूर्ण व्यवस्थित व्यापक ज्ञान किसी गुह्ययवादी को नहीं था और न ही इसकी शक्तिशाली प्रक्रिया की सक्रिय प्रभावी अनुभूति का। यह सोचने की एक प्रवृत्ति है कि 'अतिमानस' का अर्थ केवल यह है - 'मन से ऊपर' और यह उससे मेल खाता है जिसे दूसरे मनीषियों ने समय के भागवत स्तरों के रूप में खोजा है – मन से ऊपर लेकिन 'परम लोकातीत सत्य' (Ultimate Transcendent Reality) की अपेक्षा निम्न। लेटिन शब्द 'सुपर' (Super), जो श्रीअरविन्द ने प्रयोग किया है, विशेष महत्व रखता है, जब हम मन के ऊपर की उनकी तालिका को देखते हैं। यह शब्द अप्रतिम शक्ति के साथ उभरता है। वह उच्चतर मन (Higher Mind), प्रकाशित मन (Illumined Mind), अन्तः प्रज्ञात्मक मन (Intuitive Mind), अधिमन (Overmind) और फिर अतिमानस (Supermind), अन्तःविचार व्यक्त करते हैं। 'सुपर' शब्द इन सब स्तरों को अंधाधुन्ध रूप से आच्छादित नहीं करता। 'ओवर' (Over) शब्द से अलग पहचान रखकर यह पूर्ण परमोच्चता का संकेत उपलब्ध करता है और श्री अरविन्द के प्रतिपादनों में 'अतिमानस' केवल 'परम लोकातीत सत्य' के बीच के उच्चतम स्तर को। श्री अरविन्द के प्रतिपादनों में 'अतिमानस' केवल 'परम लोकातीत सत्य' के नीचे के उच्चतम स्तर को ही व्यक्त नहीं करता बल्कि यह उस सत्य का अभिन्न अंग है।

पश्चिमी और पूर्वी रहस्यवादी में अनेक शब्द हैं जो श्री अरविन्द के 'अतिमानस' के सार-तत्व को समाविष्ट करने के लिए सतह पर प्रकट होते है लेकिन मूलतः करते नहीं। 'नयी प्लेटोनिस्टों' (Neo-Platonists) के 'Nous' शब्द को ले। 'अतिमानस' यह Nous नहीं है। यह वह चेतना है जिसका दुर्बल, अस्पष्ट और शब्दाडम्बरी विवरण है नियो प्लेटोनिक Nous । मन से ऊपर के सभी स्तर आध्यात्मिक हैं और आनन्द के वैविध्य में प्रांजल एकता की क्रीड़ा है उनके

लिए वह सहज जिसे मैंने अपनी एक कविता में 'The shining smile of the one Self everywhere' कहा है; वे एक पैटर्न और समरसता का रूप लेते हैं जिसकी तरंगित प्रतिक्रिया एवं गूंज हम अपनी सृष्टि में पाते हैं। इसलिए वे सब Nous हैं वह चेतना जिसका बहुविध पार्थक्य यहाँ विद्यमान चीजों का रचनात्मक आद्य प्ररूप (archetype) है। इस चेतना का शीर्ष है अधिमानस (Overmind)। मैं कह नहीं सकता कि प्लोटिनस (Plotinus) को अधिमानस की झलक मिली थी या नहीं। शायद यह झलक ही थी कि अपने 'एनीड' (Enneads) में उसने आध्यात्मिक जगत् में भव्य भगवद् रूपों के हर्षोन्मादपूर्ण अन्तः संयोजन का काव्यात्मक वर्णन किया है। लेकिन इस सबसे Nous और 'अतिमानस' की अभिन्नता सिद्ध नहीं होती। जैसे 'अधिमानस' (महानतम देवताओं का जगत्) हमारी सृष्टि का आद्यप्ररूप (archetype) प्रतीत होता है, उसी तरह अतिमानस अधिमानसिक स्तर का आद्यप्ररूप है। दूसरे शब्दों में, यहाँ जीवन से तुलना में 'अधिमानस' परिपूर्णता है लेकिन जो अभी परे है, उससे तुलना करें तो 'अधिमानस' अपूर्व 'प्रकृति' है जिसे सामान्य रूप से 'एकमेव' (One) और 'अनेक' (Many) के बीच परिशुद्ध संतुलन एवं समन्वय से युक्त समझ लिया गया है। 'अधिमानस' 'अज्ञान' (Ignorance) नहीं हैः यह 'ज्ञान' है तथापि यह ऐसा 'ज्ञान' है जो 'अज्ञान' की स्थिति की ओर जाता है। इसलिए नियो प्लेटोनिक Nous 'अतिमानस' होने से बहुत दूर है। इसका सीधा-सादा प्रमाण यह हैः 'अतिमानस' की पूर्ण सचेतन अभिज्ञता' का अर्थ है 'अतिमानस' के प्रमुख रहस्य की अभिज्ञता एवं रहस्योदघाटन जो यह है कि मनुष्य की समस्त प्रकृति को भौतिक तत्त्व तक - धरती पर अमर परिपूर्ण अस्तित्व में दिव्य बनाया जा सकता है। ऐसी अभिज्ञता और रहस्योद्घाटन पार्थिव आवरण को दिव्य और अमर बनाने के सहज प्रयास के विरूद्ध नहीं जायेगा। अतिमानस का सार-तत्व है इसमें निहित वह शक्ति जो पूर्ण एवं सर्वांगीण दिव्यकरण को कार्यान्वित करने में समर्थ है। उस शक्ति की थाह पूर्व में कभी नहीं ली जा सकती थी, किसी ने कभी सोचा भी नहीं था कि ऐसा मूलभूत बदलाव लाना संभव हो सकता है। केवल प्लोटिनस के Nous को ही न छोड़ दें, वेद उपनिषद और गीता भी पार्थिव 'प्रकृति के संदर्भ में अतिमानस की किसी प्रत्यक्ष गतिशील अनुभूति से परिचित नहीं है। इन ग्रन्थों में इसके महत्वपूर्ण संकेत एवं झलकियां हैं: वेदों का सत्यम ऋतम् बृहत्, उपनिषदों का 'विज्ञान', गीता का 'परा-प्रकृति' के साथ 'पुरुषोतम'। लेकिन अतिमानस के साथ आमूल रूपान्तरकारी अन्तरंगता वहाँ नहीं थी। समाधि की अवस्था में इसमें ऊपर उठना या इसमें खो जाना और इसके स्वर्णिम द्वार के माध्यम से उपरि-अंतरिक्षी 'अज्ञात' में प्रवेश करना या इसके उज्जवल निर्देशन के अंतर्गत दूर से या ऊपर से कार्य करना वही बात नहीं है जो भौतिक खुले नेत्रों से इसमें आरोहण करने, इसमें निवास करने और प्रगतिशील अवरोहण को सामने लाने में है जैसा कि अरविन्द और श्रीमाँ कर रहे हैं।

अतिमानस और अतिमानसिक अवतरण के प्रकाश में निरन्तर दिन-प्रतिदिन निवास करना, जिससे दिव्य मन, दिव्य प्राण, दिव्य देह को रूप दिया जा सके - यह है श्री अरविन्द के योग का लक्ष्य और निर्णायक स्थिति। लेकिन यह लम्बा और कठिन मार्ग है। इस निर्णायक स्थिति तक

पहुँचने से पहले आत्म-शुचिता, आत्म-शोधन, आत्मानुशासन, अनेक दिशाओं में विकास और दिव्य शक्ति (Divine shakti) तथा उसके कार्य के प्रति सभी स्तरों पर उद्घाटन आवश्यक है। इस लम्बे प्रशिक्षण और प्रक्रिया के लिए दूसरों को अवसर दिया जा सके और इस महान् रूपान्तर हेतु जिज्ञासुओं का केन्द्र निर्मित हो सके, इसलिए श्री अरविन्द ने अपने चारों ओर एक आश्रम विकसित होने दिया। इस केन्द्र में जिज्ञासुओं को मानवीय अस्तित्व की पिछली विरोधी प्रवृत्तियों द्वारा निर्मित आदतों एवं प्रवृत्तियों को छोड़ने होगा, अहंकारी जीवन और उसकी अज्ञानता से चिपकाव का त्याग करना होगा और अन्ततः आधे-अधूरे आध्यात्मिक प्रयास एवं उपलब्धि से प्राप्त संतुष्टि को छोड़ने होगा। यह सब इसलिए कि सर्वांगीण एवं अतिमानसिक योग के अंतिम संचालन के लिए स्वयं को दुरुस्त रख सकें। ऐसे केन्द्र का सफल निर्माण स्पष्टतया उस कार्य के लिए एक अनिवार्य प्रारंभिक शर्त्त है जिसे श्री अरविन्द ने जगत् के लिए शुरू किया है क्योंकि व्यक्तिगत सिद्धि उनका उद्देश्य नहीं है बल्कि उनका लक्ष्य है जीवन में सर्वोच्च सत्य का और मानवजाति की मुक्ति एवं परिपूर्णता के लिए धरती पर एक नई शक्ति का महान् सामूहिक अवतरण।

मैं और संकेत कर दूं कि यह इस योग का नयापन जो श्री अरविन्द के इतने लम्बे परिश्रम के लिए उतरदायी है। यद्यापि चालीस वर्ष बीत चुके जब उन्होंने इस पथ पर चरण बढ़ाये थे और यद्यपि ज्ञान योग, भाक्तियोग और कर्मयोग की सारी उपलब्धियां हस्तगत हो गई लगती हैं और यद्यपि एक ओर बुद्ध को निर्वाण तथा दूसरी ओर शरीर में सारे गुह्य चक्रों का तांत्रिक जागरण सिद्ध किया जा चुका लगता है लेकिन श्री अरविन्द अब भी घोषणा करते हैं कि उनके श्रम का अभी अंत नहीं हुआ है। क्या आप सोचते हैं कि श्री अरविन्द जैसे आध्यात्मिक मनीषी उसे प्राप्त करने में चालीस वर्ष तक श्रम करेंगे जो दूसरों ने छः या कुछ वर्षों में प्राप्त कर लिया? निश्चय ही स्पष्ट है कि वह एक महान् अतुलनीय कार्य में लगे हैं। यह समझने के लिए यह पर्याप्त है कि उनका लक्ष्य नवीन और महत्वपूर्ण है। जहाँ तक आध्यात्मिक मनीषियों द्वारा ली गई कालावधि का प्रश्न है, यह उनके लक्ष्य पर निर्भर होती है। श्री अरविन्द का लक्ष्य अभी प्राप्त नहीं हुआ है क्योंकि यह है अतिविशाल-अतिमानस का सर्वांगीण अवतरण और यह कार्य बाह्य भौतिक में अभी पूर्णरूपेण सम्पन्न नहीं हुआ है। जो अब तक हो चुका है, वह भारतीय आध्यात्मिक के इतिहास में हुए किसी भी कार्य से अधिक विशिष्ट है क्योंकि अवतरण के अंतिम पगों तक लाये हैं। अंतिम सौवें पग से पूर्व भी 'अतिमानस' में श्रेष्ठतापूर्ण प्रवेश हो जायेगा उस स्पष्ट दृष्टि के संकेत दिए हों - अतिमानसिक अवतरण के पूर्ण गतिविज्ञान की साधना के निर्देशनों को तो छोड़ ही दीजिये। क्या यह कोई आश्चर्य है कि श्रीअरविन्द के शिष्य इस मार्ग को नया और असाधारण कहते हैं?

दिव्य माता

श्री अरविन्द, हिन्दी रूपांतरः विमला गुप्ता

वह माता खड़ी हुई जन्म, संघर्ष और भाग्य के ऊपरी शिखर पर
मन्द गति से घूमते युग चक्र, उसके ही इंगित पर करते हैं प्रत्यावर्तन
एक मात्र उसी के हाथ कर सकते हैं परिवर्तित
कालरूपी सर्प का मूलाधार।
यही है वह रहस्य जिसे 'महानिशा' छुपाये है
प्राण की रासायनिक ऊर्जा शक्ति भी उसी की है
'प्रभु' के अन्तःकरण में वही 'नीरवता' की शक्ति है
वह अमोघ 'बल' है, अपरिहार्य 'शब्द' है,
हमारे कठिन ऊर्ध्वारोहण का वह चुम्बकीय आकर्षण है।
वह सूर्य है, जिससे हम अपने सूर्य करते हैं प्रज्वलित,
अदृश्य लोकों से झाँकता 'प्रकाश' भी वही है
वही अकल्पित प्रदेशों से इंगित करता 'आह्लाद' है
वह सबकी 'आधार-शक्ति' है, जो अभी तक नीचे नहीं उतरी है।
समस्त प्रकृति मूक भाव से उसी को पुकारती है
अपने पद-स्पर्श से वह भर देती है जीवन की धड़कनों के दुखते व्रण
वह मनुष्य की धुँधली आत्मा पर से तोड़ देती है अज्ञान की मुहर,
वह पदार्थों के बन्द हृदय में जलाती है अपनी लौ,
यहाँ सब बनेगा एक दिन उसके माधुर्य का सदन।
सब विषमताएँ तैयारी करती है उसके सामंजस्य की।
उसी की ओर आरोहण करता है हमारा ज्ञान
उसी का अन्वेषण करती है हमारी भावनाएँ
उसी के जादुई आनन्द में हम एक दिन करेंगे वास
उसी के आलिंगन में हमारी पीड़ाएँ होंगी परिवर्तित उल्लास में,
और उसी के द्वारा हमारी आत्मा एक हो जायेगी 'सर्वात्मा' से।

-सावित्री

पूर्णयोग की ध्यान-साधना

-शिवचरण दास वर्मा

श्री अरविन्द द्वारा प्रतिपादित पूर्णयोग का ध्येय है मानव की ऊर्ध्वगामिनी चेतना का अवतरण करती हुई दिव्यचेतना से समन्वय। इस योग प्रणाली में ध्यान का विशेष महत्व है।

ध्यान का अर्थ है मन का मनन (संकल्प-विकल्प) रहित, चिंतन रहित बन कर आत्माकार होकर रहना। 'ध्यान' शब्द के अंगरेजी भाषा में दो पर्यायवाची हैं - Meditation (निदिध्यासन) और विचार धारा पर एकाग्र करता है तो उस क्रिया को निदिध्यासन कहते हैं । यह तरीका सुगम है परन्तु इसके परिणाम अत्यन्त सीमित होते हैं। जब साधक किसी एक ही विषय या मूर्ति या भावना पर मन की दृष्टि लगा देता है और एकाग्रता की सहायता से उसके मन में स्वभावतः ही उस विषय, मूर्ति या भावना का ज्ञान या भाव उदित हो जाता है तो उस क्रिया को चिंतन कहते हैं। यह अधिक कठिन तरीका है परन्तु परिणाम की दृष्टि से अधिक शक्तिशाली है।

आँखे बन्द करके एकाग्रता का अभ्यास करना ध्यान नहीं है। वह तो सत्य को नीचे उतार लाने की केवल एक पद्धति है। यदि इस परम्परागत पद्धति के बिना ही वह सत्य चेतना आ जाये (जैसा कि श्रीमाँ के अन्दर आई थी) तो यह और भी अच्छा है। जब तक मनुष्य में चंचलता, उत्सुकता और खींचतान (एकाग्रता के लिए संघर्ष) रहता है तब तक एकाग्रता नहीं आती। आरम्भ में लम्बे समय तक एकाग्रता का अभ्यास करके अपने को थका नहीं देना चाहिए। कुछ समय एकाग्रता के पश्च्चात् साधक को विश्रांति के लिए अपने को शिथिल अवस्था में छोड़ देना चाहिये और ध्यान करना चाहिये।

एकाग्रता और ध्यान एक ही वस्तु नहीं हैं। एकाग्रता का तात्पर्य है चेतना को एकत्र कर लेना और उसे या तो एक बिन्दु पर केन्द्रित कर लेना अथवा किसी एक विषय की ओर (जैसे भगवान् की ओर) मोड़ देना। ध्यान में चेतना का इस प्रकार एकत्र होना आवश्यक नहीं है। ध्यान का तात्पर्य सत्य चेतना के साथ युक्त होना या उसके अवतरण को अनुभव करना है।

ध्यान की एक पद्धति यह है कि मन से सभी विचारों को बाहर निकाल देना और उसे शुद्ध, सजग व खाली कर छोड़ देना जिससे कि उस पर दिव्य ज्ञान प्रकट हो और अपनी छाप डालकर साधारण चेतना का रूपांतर कर दे। दूसरी ध्यान-पद्धति आत्म-निरीक्षण की है, शास्त्रों में वर्णित 'साक्षी –भाव' द्वारा। इसमें पीछे खड़े होकर आते हुए विचारों का निरीक्षण किया जाता है। श्री अरविन्द द्वारा प्रतिपादित ध्यान की पूर्ण पद्धति का उपयोग करना, प्रत्येक को उसके निजी स्थान

में और उसके निजी उद्देश्य से व्यवहृत करना।

जिस विषय या मूर्ति या भाव का हम चिंतन करते हैं उसका हृदय में स्फुरण होना ही ध्यान है। जब स्फुरण के स्फुरते उसकी भी विस्मृति हो जाती है तब वह उच्च स्तर का ध्यान है। सर्वोत्तम ध्यान वह है जो सहज स्वाभाविक रूप में होता है। तब तक साधक को ध्यान में जाने के लिए प्रयास करने की आवश्यकता होती है तब तक ऐसा समझना चाहिये कि वह आध्यात्मिक जीवन की योग्यता नहीं प्राप्त कर सका है। यदि उसमें से बाहर निकलने के लिये प्रयास करना पड़ता है तो उसका ध्यान इस बात का सूचक हो सकता है कि वह आध्यात्मिक जीवन बिता रहा है।

ध्यान क्यों किया जाता है? दिव्य शक्ति की ओर अपने को खोलने के लिए, अपनी साधारण चेतना का रूपांतर करने के लिए, अपने सत्ता की गहराई में बैठने के लिए, शांति, स्थिरता और नीरवता में प्रवेश करने के लिए। व्यावहारिक प्रयोजन से भी ध्यान किया जा सकता है जैसे किसी समस्या के समाधान के लिए या किसी कठिनाई को पार करने के लिए।

ध्यान का सर्वोत्तम विषय ब्रह्म है और यह भावना कि ब्रह्म (भगवान् या दिव्य शक्ति श्रीमाँ) सब में हैं, सब ब्रह्म में हैं और सब कुछ ब्रह्म ही है-सर्व खल्विंद ब्रह्म। साधक अन्य को भी विषय या इष्ट-साकार या निराकार अपने स्वभाव और संस्कारों के अनुकूल निश्चित कर सकता है। परन्तु एक ही निश्चित विषय का अवलम्बन अन्त तक रहना चाहिये।

साधक की प्रर्याप्त प्रगति होने पर ध्यान किसी भी समय किया जा सकता है और सहज, स्वाभाविक रूप में ध्यान की स्थिति प्रत्येक समय होती रहनी चाहिये। वैसे आरम्भ में ध्यान का परम्परागत समय प्रातः ब्राह्म-मूहर्त और सायं संध्याकाल हैं। रात्रि में सोने से पूर्व भी आरम्भिक अवस्था में ध्यान का अनुकूल समय है।

ध्यान एकांत और निर्जन स्थान में पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुंह करके अनुकूल आसन (पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन) में बैठ कर करना चाहिये। शरीर का शिथिल व निश्चल रहना आवश्यक है। लेट कर ध्यान करने से अंतर में समाहित होने की अपेक्षा जड़ बन जाने की प्रवृत्ति पैदा होती है। शीर्षासन, सर्वांगासन, पक्ष्चिमोत्तान आदि योगासन और प्राणायाम ध्यान में सहायक होते हैं यदि किसी योगी से इनकी सही पद्धति सीख ली जाय अन्यथा उससे बाधाएं खड़ी हो सकती हैं।

ध्यान के लिए चार मुख्य शर्तें है आंतरिक पुकार , अभीप्सा (aspiration) निरंतर प्रयास अथवा तप (perseverance),और समर्पण । चेतना को एकाग्र करने के दो स्थान शरीर में हैं- मस्तक (त्रिकुटी व सहस्त्रार) और हृदय। साधारणतः जब तक चेतना ऊपर नहीं उठती तब तक एकाग्रता का प्रमुख केन्द्र हृदय ही होना चाहिये। परन्तु यदि साधक कभी हृदय में और कभी

मस्तक के ऊपर ध्यान करे तो कोई हर्ज नहीं है । ध्यान से बाहर आने और आँखें खोलने से पहले कुछ क्षणों तक शांत व स्थिर बने रहना चाहिये।

यह कहना कि कोई व्यक्ति तब तक सफलतापूर्वक ध्यान नहीं कर सकता जब तक कि वह शुद्ध व पूर्ण न हो जाय-ठीक नहीं है। श्री अरविंद को सदा ही ध्यान द्वारा अनुभूति पहले प्राप्त हुई और शुद्धि बाद में उसके परिणाम स्वरूप आरंभ हुई।

चित्त, मानसिक प्राणिक और शारीरिक चेतनाओं का मिश्रित रूप है। इसी रूप में से विचार, भावावेग संवेदन आदि क्रियाएं उत्पन्न होती हैं। पातंजलि योग-पद्धति में इन्हीं सब को एक दम शांत कर दिया जाता है जिससे कि चेतना निश्चल होकर समाधि में चली जाय। इस प्रकार की चढ़ने-उतरने वाली समाधि एक अवस्था या वृत्ति है। वह स्वयं अपने आप में चेतना का परिर्वतन (Transformation) नहीं कर सकती, जो कि पूर्ण योग का उद्देश्य है । इस कारण श्री अरविंद व श्रीमाँ ने परम्परागत समाधि को आवश्यक नहीं माना। पूर्ण योग में दूसरी तरह की प्रक्रिया होती है। इसमें साधारण चेतना की क्रियाओं को निश्चल बना कर उस निश्चलता के अन्दर उच्चतर चेतना (Supramental Consciousness) और उसकी शक्तियाँ को उतार लाना होता है जो कि मानव-प्रकृति का रूपांतर कर देती है। चितवृत्तियों का दमन या निरोध करने की बजाय उनको संयमित करना होता है ताकि जब साधक चाहे तो चित्त निश्चल और जब चाहे तो सक्रिय हो जाय। साधक एक विषय (जैसे कि दिव्य-चेतना का अवतरण) का चिंतन करते हुए शांत-स्थिर बना रह सकता है और यह निरीक्षण कर सकता है कि चेतना के अन्दर कौन सी चीज आती है। और फिर उस चीज के साथ समुचित व्यवहार कर सकता है। उदाहरणार्थ ध्यान में साधक भगवान् के विषय में विचार कर सकता है, प्रभाव ग्रहण कर सकता है, यह देख सकता है कि प्रकृति में क्या हो रहा है, और उस पर क्रिया कर सकता है ।

पूर्ण योग की ध्यान-पद्धति में मंत्र और उनका जप अनिवार्य नहीं है परन्तु यदि साधक को कोई मंत्र सहायक प्रतीत हो और जब तक वह सहायक मालूम हो तब तक वह उसका उपयोग कर सकता है। मंत्र का कार्य है आंतर मन में ऐसे प्रकंपनों (vibrations) को पैदा करना जो चेतना को उस सिद्धि के लिये तैयार करते हैं जिसका प्रतीक व मंत्र होता है। 'ओम्' मंत्र (प्रणव जप) में एक अपनी शक्ति है यदि उसके अर्थ पर ध्यान देकर जप किया जाय। गायत्री मंत्र ज्ञान का मंत्र है और उसकी शक्ति है भागवत सत्य की ज्योति। यह सत्ता के सभी लोकों में सत्य की ज्योति को ले आने का मंत्र है।

नींद, विस्मृति, मन की भाग दौड़ (अर्थात् विचारों का वेग), शारीरिक चंचलता और अधीरता- ये पांच विघ्न साधक की प्रगति में आते हैं। इनका उपाय दृढ़ संकल्प निरंतर सतर्कता है।

मन को शांत-स्थिर करने के लिए उसके साथ कुश्ती करने से कोई विशेष लाभ नहीं है। साधारणतया उस खेल में मन की ही जीत होती है। वास्तव में पीछे हटना, अपने को विचारों से

पृथक कर लेना ही अधिक आसान उपाय है। विचार मन में बाहर से आते हैं। वे मनोमय देश से गुजरने वाले यात्री हैं जिनके साथ साधना का कोई सम्बन्ध नहीं है। उनको बाहर ही रोक देना चाहिये ओर यदि फिर भी अन्दर घुसने लगें तो उनको फेंक देना चाहिये। इसके साथ अपने से ठीक ऊपर स्थित दिव्य शक्ति की साधक कल्पना कर सकता है और उसे नीचे पुकार सकता है अथवा चुपचाप उसकी सहायता की प्रतीक्षा कर सकता है। साधक अपने मस्तिष्क, मन और शरीर में उस शक्ति की ऊपर से आती हुई नीरवता (quietude) का आह्वान भी कर सकता है।

ध्यान में क्या अनुभूतियां होती हैं, यह भी देखना चाहिए। कुछ इस प्रकार है जैसे-

1.जीवन में और समस्त विश्व ऊपरी सतह पर तूफान है। मानों विक्षुब्ध समुद्र में लहरें संघर्ष कर रही हों, और इस क्रुद्ध सागर के नीचे विशाल प्रसारताएं (vast expanse) विद्यमान हैं जो स्थिर, प्रशांत और मधुर मुसकान पूर्ण हैं।

2.ध्यान की नीरवता में शाश्वतता के द्वार (gates of eternity) खुल गये हैं।

3.प्रभु (Divine) ने साधक की समस्त दुश्चिन्ताओं को ले लिया है और इसके लिए छोड़ रखा है केवल आनन्द और प्रभु के साथ दिव्य मिलन का चरम उल्लास।

4.प्रभु सम्पूर्ण प्रेम है और उसका प्रेम सभी मनों और सभी हृदयों के अन्तस्तल में देदीप्यमान है। कभी-कभी ऐसी अनुभूति भी होती है मानो प्रभु साधक का रूपांतर (Transformation) करके उसको ज्योतिपूर्ण बना रहे हों।

5.प्रभु को शब्दों में व्यक्त करने की क्षमता न होने पर भी प्रभु के अन्दर निवास किया जा सकता है और उसकी अनंतता के साथ एक हुआ जा सकता है।

6.प्रभु की कृपा (Divine grace) अवतरित हो रही है और उसके साधक को अनुपम शक्ति, प्रसन्नता, ज्योति, ज्ञान, आनन्द, प्रेम और शान्ति मिल रही है।

7.साधक की सत्ता का एक भाग पूर्णतया पवित्र है। मानो उस पवित्र अंश से आंतरिक सम्बन्ध स्थापित करके साथक पूर्णयोग में अग्रसर हो रहा है।

पूर्ण-योग में ध्यान की अंतिम स्थिति समाधि के बजाय सजग शांति और निश्चल नीरवता की स्थायी अनुभूति के रूप में होती है। शांति और नीरवता के अन्दर ही प्रभु आत्म-प्रकाश करते हैं। और तब सब कुछ पावन शांति और पवित्र नीरवता में परिणत हो जाता है। ऐसी स्थिति में शांत भाव से जलने वाली दीप शिखा की भांति और सीधे ऊपर की ओर उठने वाले सुगन्धित धूम्र की भांति साधक की ऊर्ध्वगामिनी चेतना प्रभु की ओर प्रवाहित होती है और फिर ऊपर से अवतरण करती हुई दिव्य चेतना से उसका योग हो जाता और उसकी निजी चेतना का रूपांतर होता है। योगी योग द्वारा सब दुःखों से छूट कर शाश्वत सुख को प्राप्त होकर ब्रह्म में रहता है। शरीर उसका संकल्प मात्र बन जाता है।

श्री अरविन्द एवं माँ की रचनाओं का अध्ययन

– नलिनी कांत गुप्त

हम श्री अरविन्द एवं श्री माँ की रचनाओं का अध्ययन क्यों करते हैं और अगर अध्ययन करते है तो प्रश्न यह कि अध्ययन कैसे करें?

क्या हम इन रचनाओं को केवल पढ़ने के लिए पढ़ते हैं? विचारों को जानने के लिए? जानकारी प्राप्त करने के लिए? यह एक गौण पक्ष है- यह तो प्रसंगत: प्राप्त लाभ है। श्री माँ एवं श्री अरविन्द की वाणी के सम्पर्क में आने का सच्चा उद्देश्य है सचेतन होना, चेतना का उपार्जन करना, अधिकाधिक सचेतन होना, चेतना की अधिकाधिक वृद्धि करना। समझना अर्थात् मस्तिष्क से पकड़ना, श्री माँ एवं श्री अरविन्द की रचनाओं को बौद्धिक रूप से ग्रहण करने का प्रयास करना थोड़ा कठिन है। अधिक सरल, अधिक सही मार्ग होना उस जगत् के वातावरण में प्रवेश करना जो उन्होंने अपने शब्दों से निर्मित किया है, उस स्पन्दन का अनुभव करना जो ये शब्द उत्पन्न करते हैं। कारण यह है कि जो शब्द उन्होंने उच्चारित किये हैं, वे केवल शब्दकोशों से लिये गये या वहां प्राप्त शब्द भर नहीं है, वे केवल ध्वनियाँ नहीं है, निष्प्राण अक्षर नहीं हैं, वे हैं, जीवन्त सत्ताएँ, चेतना के प्रतीक-वही चेतना जिसका जिक्र मैंने अभी किया है। ये प्रतीक, चेतना के प्रतीक होने के कारण, शक्ति से सम्पन्न हैं और शक्ति के प्रसारक हैं – उनमें जीवन है और ये आनन्द से परिपूर्ण हैं। यही वह आंतरिक जगत् है जो शब्दों के बाह्य संसार के पीछे है और जिससे व्यक्ति का सम्पर्क होना चाहिए। पहली बात तो यह कि मानसिक समझ से पहले इस जगत् के प्रति जागरुक होना चाहिए। दूसरे शब्दों में कहें तो आपको सही विचार का विकास करना चाहिए, श्रीमाँ एवं श्री अरविन्द की वाणी ने जिस चेतना को तैयार किया है, उस चेतना की ओर अपनी चेतना को मोड़ना चाहिए। आपको गोता लगाना होगा जैसा कि जल में डुबकी लगाना हो और उस तत्त्व के स्नेह-दुलार में तर-बतर हो जाना होगा, शब्दों के वास्तविक अर्थ के जीवन्त स्पर्श में आना होगा, अर्थ के पीछे जाना होगा और जरूरी हो तो, इससे बचे रहना भी होगा। आपको उस 'रस' से सम्पर्क साधना होगा जिसने सृष्टि में स्वयं को उंडेला है। अगर आपने उसका अनुभव किया है, उसका स्वाद लिया है तो- इसका अपना प्रकाश है जो अपनी दीप्ति से स्वतः ही आपको आप्लावित कर लेगा। जीवन्त निर्झर में नहाने का यह आनन्द स्वयं को ज्ञान और सच्ची समझ की लयों में संयोजित कर लेगा।

कम से कम यह होना चाहिए श्री माँ एवं श्री अरविन्द की रचनाओं के प्रति एप्रोच का आधार। आपके पास समृद्ध बौद्धिक उपकरण हो सकते हैं, आपके पास वे सारी सूचनाएँ हो सकती हैं जो विज्ञानों और दर्शनों ने एकत्र की है, इस समय तक की मानवीय ज्ञान के विकास की सारी कहानी का अध्ययन आपके पास हो सकता है-ये सब लघु प्रकाश हैं जिस प्रकाश के समक्ष आप खड़े हैं,

उसे ये प्रकाश प्रदीप्त नहीं कर रहे हैं। वह प्रकाश आपके भीतर विद्यमान अपने ही प्रतीबिम्बन या निर्गमन से देखा और पहचाना जाता है और वह है आपके भीतर का छोटा सा आलोक-आपकी अन्तरात्मा।

निश्चय ही, ऐसे उदाहरण हैं जहाँ महान् बुद्धिजीवी, प्रसिद्ध विद्वान श्रीमाँ एवं श्री अरविन्द के सरलतम जादुई वाक्यांश के सामाने संभ्रमित हो गये हैं दूसरी ओर सरलमना लोग, जिनके ऊपर न तो ज्ञान का भार है और न ही पांडित्य-प्रदर्शन का घमंड, अपनी चेतना की गहराई में आलोक की विशुद्ध प्रवृत्ति से गुह्य अर्थ को पकड़ पाने और अनावृत करने में समर्थ हुए हैं।

आपकी मानसिक समझ, बौद्धिक अवबोध आपको खोज का आनन्द प्रदान कर सकता है और उसे बढ़ा सकता है लेकिन कदाचित् यह होगा अंत में ही या बाद में, जब आपका मस्तिष्क, आपका भौतिक तर्क आंतरिक प्रकाश के प्रवाह से धुल जाता है और जब यह विशुद्ध, नमनीय एवं विनीत बन जाता है।

दूसरा मार्ग- 'सत्य' को, श्री माँ या श्री अरविन्द के शब्द जिस 'सत्य' को अभिव्यक्त करते हैं, उसको समझने का दूसरा रास्ता यह हैं कि आप इस सत्य को अनुभव करना शुरू करें, केवल मन के द्वारा एप्रोच करने और वस्तुतः हृदय से भी एप्रोच करने की शुरूआत नहीं बल्कि शरीर तक में इससे अनुप्राणित होने की शुरूआत करें। श्री माँ की वाणी है कि वास्तविक समझ शरीर की समझ से आती है। वस्तुतः ज्ञान का सच्चा लक्ष्य केवल जानना नहीं है बल्कि होना है।

कवितायें

जीर्ण धर्म की केंचुल झाड़, निखिल मंगल हित,
आध्यात्मिकता आगे निकल गई निःसंशय
अंधी आस्था के गोपद-बिल से बाहर हो!
मन के, आत्मा के स्तर पर साधक भारत ने
किये पर्वताकार उच्च आदर्श प्रतिष्ठित,
जीवन स्तर पर लंगड़ाते जो भू-लुंठित हो !
जीवन की साधना चाहिए आज जनों को
जीवन के आदर्श महत् हों भू पर स्थापित।

-सुमित्रानंदन पंत

तन से विभीत, मन के वन में
जो करते रिक्त पलायन जन
वे जीवन-ईश्वर के द्रोही
जिनसे विषण्ण जग का आंगन !
तन ही ईश्वर का विटप वास
आत्मा में जिसके मूल गहन,
प्राणों के कलरव से मुखरित
मन धूप-छांह जग का आंगन!
भू कर्मभूमि, भव कर्म-हीन
जो करते ऊर्णनाभ चिन्तन,
वे मनोजाल में फंसे मूढ़
युग यग के मृत चर्वितचर्वण।

-सुमित्रानंन्दन पंत

यह शक्तियों की शोषित धरती,
जो जनगण की भारत माता,
बड़ा सदय औ' बड़ा निष्करुण
इसके संग अह, रहा विधाता !
कहां रुक गया इस भू का मन,
धरती से उठ गये चरण क्यों?
परम तत्व से ज्योति अन्ध हो,
शून्य ब्रह्म का किया वरण क्यों?

-सुमित्रानंदन पंत

ज्योति-तमस आलिंगन भरते
माया-ब्रह्म प्रीति-संयोजित,
धरा धूलि से जगता ईश्वर
भाव शस्य संपद् बन विकसित।
बहिर्मुखी भौतिक भू-तम को
अन्तर्दृष्टि प्रकाश दान कर
शिव-समाधि से जगता भारत
युग-भू-संकट गरल पान कर !

-सुमित्रानंदन पंत

मैं हूं केवल एक तृण- किरण,
जिसको मानव के पग धर चलना धरती पर !
मेरे नीचे पड़ा अडिग पर्वताकार शव-
पथराया केंचुल अतीत का।
मुझको क्या उसमें नव जीवन डाल
जगाना है जड़ शव को ?
नहीं, मुझे उर्वर भू रज से
नया मनुज गढ़ना अब-
उसमें फूंक स्वर्ग की साँस अगोचर !
नया मनुज किरणों के कर से
खोले नया हृदय-वातायन।
मै हूँ केवल एक तृण-किरण।

-सुमित्रानंदन पंत

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

क्या भारत सभ्य है? - 2

(पिछले अंक में :

यह हुई वाह्य दृष्टि, जिसमें हमने एक तरह का विश्लेषण किया, परंतु हमारे सामने यह जो विवाद उपस्थित है इसके संबंध में एक और भी दृष्टि है। उस दृष्टि से देखने पर इसका स्वरूप वैसा नहीं रहता जैसा कि संस्कृतियों के संघर्ष के रूप में स्थूल और उत्तेजक ढंग से वर्णित किया गया है; बल्कि तब यह एक अत्यंत अर्थपूर्ण समस्या के रूप में हमारे सामने आती है; यह एक विचारोत्तेजक निर्देश का रूप ग्रहण कर लेता है जिसका प्रभाव केवल हमारी ही सभ्यता पर नहीं बल्कि जो भी सभ्यताएं आज तक जीवित हैं उन सब पर पड़ता है।

आगे-)

प्राचीन दृष्टिकोण से विचार करते हुए तथा मानव जाति के विकास में प्राप्त सहायता के रूप में विभिन्न संस्कृतियों का मूल्यांकन करते हुए हम उक्त विवाद के सांस्कृतिक पहलू का उत्तर यों दे सकते हैं कि भारतीय सभ्यता एक ऐसी संस्कृति का वाह्य रूप एवं अभिव्यक्ति रही है जो मानव जाति की किसी भी ऐतिहासिक सभ्यता के समान ही महान है, वह धर्म में महान रही है, दर्शन में महान रही है, विज्ञान में महान रही है, अनेक प्रकार के चिंतन में महान रही है, साहित्य, कला और काव्य में महान रही है, समाज और राजनीति के संगठन में महान रही है, शिल्प और व्यापार-व्यवसाय में महान रही है। काले धब्बे, स्पष्ट त्रुटियां और भारी कमियां भी अवश्य रही हैं; परंतु भला ऐसी सभ्यता कौन-सी है जो सर्वांगपूर्ण रही हो, जिसपर गहरे कलंक न लगे हों, जिसमें निष्ठुर नरक न रहे हों? इसमें बड़े-बड़े छल छिद्र और अनेक अंध गलियां रही हैं, बहुत-सी अनजुती या अधजुती जमीन भी रही है; पर कौन-सी सभ्यता खाई खंदकों एवं अभावात्मक पहलुओं से खाली रही है? तथापि हमारी प्राचीन सभ्यता प्राचीन युग किंवा मध्य युग की सभ्यताओं के साथ अत्यंत कठोर तुलना करने पर भी टिक सकती है। यूनानी सभ्यता से कहीं अधिक उच्चाकांक्षी, अधिक सूक्ष्म, बहुमुखी, अनुसंधान प्रिय और गंभीर, रोमन सभ्यता की अपेक्षा कहीं अधिक उच्च और कोमल, पुरानी मिस्र की सभ्यता से कहीं अधिक उदार और आध्यात्मिक, अन्य किसी भी एशियाई सभ्यता से कहीं अधिक विशाल और मौलिक, अठारहवीं सदी से पहले के यूरोप की सभ्यता से कहीं अधिक बौद्धिक, इन सभी सभ्यताओं में जो कुछ था उस सब की तथा उससे भी अधिक की स्वामिनी यह भारतीय सभ्यता सभी अतीत मानव-संस्कृतियों से अधिक शक्तिशाली, आत्म स्थित, प्रेरणा दात्री, और महाप्रतापशाली रही है।

कई विचारकों के मत से मानव जाति निरंतर एक ही वृत्त पर घूमा करता है। अथवा वे यहां तक मानते हैं कि महानता के दर्शन हमें अधिकांश में अतीत में ही हो सकते हैं और आज हम ह्रास एवं अवनति की ही दिशा में जा रहे हैं। परंतु यह एक भ्रांति है जिसका जन्म तब होता है जब हम अतीत के उच्च ज्योति शिखरों पर तो अत्यधिक दृष्टि डालते हैं और उसकी अंधकारमय छाया को भुला देते हैं अथवा जब हम वर्तमान के अंधकारमय स्थानों की ओर अत्यधिक ध्यान देते हैं,

और इसकी प्रकाशदायनी शक्तियों एवं अधिक सुखकर आशामय पहलुओं की उपेक्षा करते हैं। इस भ्रांति के उत्पन्न होने का एक कारण यह भी है कि अपनी प्रगति को सर्वदा एक जैसी होती हुई न देख उससे हम एक गलत सिद्धांत निकाल लेते हैं।

दूसरी ओर, यदि उपनिषत्काल, बौद्ध काल या परवर्ती उच्च-साहित्यिक युग के किसी प्राचीन भारतीय को आधुनिक भारत में लाया जाये और वह इस के जीवन की ह्रास-युग से संबंध रखने वाली बहुत-सी बातों पर दृष्टि डाले तो उसे और भी अधिक विषादकारी संवेदन होगा, उसे यह अनुभव होगा कि राष्ट्र और संस्कृति का सर्वनाश हो गया है, वे उच्चतम शिखरों से पतित होकर ऐसे निम्न स्तरों पर आ पहुंचे हैं जिनसे फिर उबरने की भी आशा नहीं। वह संभवतः अपने से यह पूछेगा कि भला इस पतित संतति ने अतीत की इस महान सभ्यता की क्या दुर्दशा कर डाली है। उसे यह देखकर आश्चर्य होगा कि जब इन लोगों को प्रेरित करने, ऊंचे उठाने तथा और भी महत्तर पूर्णता एवं आत्म-अतिक्रमण की ओर ले चलने के लिये इतना अधिक मौजूद था तब भला कैसे ये इस निःशक्त और जड़ अस्तव्यस्तता में आ गिरे और भारतीय संस्कृति के उच्च प्रेरक भावों को और भी गंभीरतर एवं विशालतर परिणतियों तक विकसित करने के बदले उन्हें भद्दी अभिवृद्धि से लद जाने दिया, उन्हें कलुषित, विगलित और नष्टप्राय होने दिया। वह देखेगा कि मेरी जाति भूतकाल के वाह्य आचारों, खोखली और जीर्ण-शीर्ण वस्तुओं से चिपकी हुई है और अपने उदात्ततर तत्त्वों का नौ-दशमांश खो बैठी है। वह उपनिषदों और दर्शनों के वीरतापूर्ण काल की आध्यात्मिक ज्योति और शक्ति के साथ बाद की तामसिकता या हमारे दार्शनिक चिंतन की तुच्छ, टूटी-फूटी और अधूरे रूप में उधार ली हुई क्रिया की तुलना करेगा। उच्च साहित्यिक युग की बौद्धिक जिज्ञासा, वैज्ञानिक उन्नति, सर्जनशील साहित्यिक एवं कलात्मक महत्ता और श्रेष्ठ एवं प्रचुर उद्घाटन शक्ति के पश्चात परवर्ती अधःपतन अर्थात् जाति की मानसिक दरिद्रता, गतिहीनता, जड़ पुनरावृत्ति, सर्जनक्षम बोधि की अपेक्षाकृत दुर्बलता, कला की दीर्घकालीन वंध्यता और विज्ञान का विलोप किस हद तक पहुंच गया है यह देखकर वह दंग रह जायेगा। नीचे की ओर अज्ञानावस्था में उतर आना, प्राचीन शक्तिशाली संकल्प और तपस्या का क्षीण हो जाना और इच्छाशक्ति का प्रायः नितांत अक्षम हो जाना देखकर वह आठ-आठ आंसू रोयेगा।

प्राचीन युग की सरल और अधिक अध्यात्मतः युक्तियुक्त सुव्यवस्था के स्थान पर उसे एक घबड़ा देने वाली, अस्तव्यस्त, अव्यवस्थित व्यवस्था दिखलायी देगी जिसका न कोई केंद्र होगा और न कोई व्यापक समन्वयकारी विचार। उसे किसी सच्ची समाज व्यवस्था के दर्शन नहीं होंगे बल्कि वह देखेगा कि सारी व्यवस्था ही विकृत हो रही है और वह विकृति कहीं तो कुछ समय के लिये रुकी हुई है और कहीं बड़ी तेजी के साथ बढ़ती जा रही है। जो महान सभ्यता अपने को अवस्थाओं के अनुकूल बनाने में पटु थी, जो दूसरों से ग्रहण की हुई वस्तु को आत्मसात करने और फिर उससे दस गुना प्रतिदान करने की क्षमता रखती थी, उस सभ्यता के स्थान पर वह एक ऐसी असहाय सभ्यता को देखेगा जो वाह्य जगत की शक्तियों को और विरोधी परिस्थिति के दबाव

को निष्क्रिय भाव से या केवल कुछ एक निष्प्रभाव आकस्मिक प्रतिक्रियाओं के साथ सहन करती है। इतना ही नहीं, एक समय तो उसे ऐसा दिखायी देगा कि इस देश में श्रद्धा और आत्म-विश्वास की इतनी अधिक कमी हो गयी है कि इसके मनीषी बाहर से आयी हुई एक विजातीय संस्कृति के लिये अपने प्राचीन भावों और आदर्शों को मटियामेट करने के लिये लालायित हैं। निस्संदेह वह यह भी देखेगा कि परिवर्तन का सूत्रपात हो चुका है, पर शायद उसे इस बात में संदेह हो सकता है कि यह परिवर्तन कितनी गहराई तक पहुंचा है अथवा क्या यह इतना शक्तिशाली है कि संपूर्ण राष्ट्र की रक्षा कर सके, क्या यह इतना सामर्थ्य रखता है कि समस्त जाति को उसकी चिरपोषित जड़ता और दुर्बलता से ऊपर उठा सके, क्या यह इतना आलोकित है कि प्राचीन भावना के नये अर्थपूर्ण रूपों का गठन करने के निमित्त एक नूतन और सबल सर्जनात्मक प्रवृत्ति का मार्गदर्शन कर सके।

ऊपरी और सरसरी दृष्टि से देखने पर कोरी निराशा के सिवा और कुछ नहीं दिखता पर अधिक सोच समझ कर देखा जाए तो आशा दीख पड़ती है। उच्च शिखरों से निम्न स्तरों पर अवतरण अवश्य हुआ, पर वह एक ऐसा अवतरण था जिसने अपने मार्ग में ऐश्वर्य–वैभव का संग्रह किया, जो आध्यात्मिक खोज तथा उपलब्धि की परिपूर्णता के लिये आवश्यक था। हमारी प्राचीन संस्कृति के ह्रास को इस रूप में भी देखा जा सकता है कि वह पुरानी रीति-नीतियों का एक ऐसा क्षय और विनाश था जिसकी जरूरत थी ताकि नये सृजन के लिये मार्ग साफ हो सके और इतना ही नहीं बल्कि, यदि हम चाहें तो, एक अधिक महान और अधिक पूर्ण सृजन भी हो सके।

यदि किसी जाति या सभ्यता की आभ्यंतरिक इच्छा मृत्यु का आलिंगन करने की हो, यदि वह अवनतिजनक उदासीनता और मुमूर्षु की हस्तक्षेप न करने देने की इच्छा के साथ चिपकी रहे या शक्तिशाली होते हुए भी विनाशकारी प्रवृत्तियों पर अंधवत आग्रह करे अथवा यदि वह केवल मृत युग की शक्तियों को ही स्नेह के साथ संजोये और भविष्य की शक्तियों को अपने से दूर हटा दे, यदि वह अतीत जीवन को भावी जीवन की अपेक्षा अधिक पसंद करे, तो कोई भी चीज अवश्यंभावी विघटन या विध्वंस से उसकी रक्षा नहीं कर सकेगी, यहां तक कि विपुल शक्ति, साधन-संपदा और बुद्धि, जीवन के लिये आह्वान करने वाली शत-शत पुकारें और निरंतर प्रदान किये गये अवसर भी उसे विनाश से नहीं बचा सकेंगे। परंतु यदि उसके अंदर दृढ़ आत्म-विश्वास उत्पन्न हो जाये, जीने की प्रबल इच्छा जागृत हो उठे, यदि वह आनेवाली वस्तुओं की ओर खुल जाये, भविष्य को और उसके द्वारा प्राप्त होने वाली वस्तुओं को अधिकृत करने की इच्छुक हो और जहां कहीं वह (भविष्य) विरोधी प्रतीत हो वहां वह उसे बदल देने की शक्ति रखती हो, तो वह विरोध और पराजय से भी अदम्य विजय की शक्ति खींच सकती है और ऊपरी विवशता एवं पतन की अवस्था से नवजीवन की ओजस्वी ज्वाला के रूप में एक भव्यतर जीवन की ज्योति की ओर उठ सकती है। भारतीय सभ्यता अपनी आत्मा की चिरंतन शक्ति के द्वारा सदा ही यही करती रही है और यही करने के लिये आज उसका पुनरुत्थान हो रहा है।

हमारे जीवन के अनेक आचार-अनुष्ठान जो प्राचीन या यहां तक कि सनातन होने का दावा करते हैं, मानों वस्तुओं के प्रत्येक वाह्य रूप को सनातन कहा जा सकता हो, क्षीण होकर विलुप्त हो जायंगे; इतना ही नहीं वरन अपने सर्वश्रेष्ठ सिद्धांतों और आदर्शों को हम अपने अंतर में जो आकार देते हैं वे भी शायद भविष्य से, अधिक-से-अधिक, यही मांग करेंगे कि उन्हें समझ-बूझकर स्वीकार किया जाये। अंततः, आगामी युग आज के यूरोप और एशिया को शायद बहुत कुछ उसी तरह देखेंगे जिस तरह हम जंगली जातियों या आदिवासियों को देखते हैं।

इसमें संदेह नहीं कि प्रत्येक विघटनकारी आक्रमण का प्रतिकार हमें पूरे बल के साथ करना होगा परंतु इससे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अपनी अतीत की उपलब्धि, वर्तमान स्थिति और भावी संभावनाओं के संबंध में, अर्थात् हम क्या थे, क्या हैं और क्या बन सकते हैं इस सब के संबंध में हम अपनी सच्ची और स्वतंत्र सम्मति निश्चित करें। हमारे अतीत में जो कुछ भी महान, मौलिक, उन्नतिकारक, बलदायक, प्रकाशदायक, जयशील एवं अमोघ था उस सब का हमें स्पष्ट रूप से निर्धारण करना होगा और फिर उस में से भी जो कुछ हमारी सांस्कृतिक सत्ता की स्थायी मूल भावना एवं उसके अटल विधान के निकट था उसे साफ-साफ जानकर हमें उसे अपनी संस्कृति के सामयिक वाह्य रूपों का निर्माण करने वाली अस्थायी वस्तुओं से पृथक कर लेना होगा।

भूतकाल में जो कुछ भी महान था उस सब को ज्यों-का-त्यों सुरक्षित नहीं रखा जा सकता और न उसे अनंत काल तक बार-बार दुहराया ही जा सकता है; क्योंकि हमारे सामने नयी आवश्यकताएं आती हैं, अन्यान्य क्षेत्र उपस्थित होते हैं। परंतु हमें इस बात का भी विवेचन करना होगा कि हमारी संस्कृति में ऐसी चीजें कौन सी थीं जो त्रुटियों से युक्त थी किंवा ठीक तरह से नहीं समझी गयी थीं, जो या तो अपूर्ण रूप से गठित थी अथवा केवल युग की सीमित आवश्यकताओं या प्रतिकूल परिस्थितियों के ही उपयुक्त थीं। क्योंकि यह दावा करना सर्वथा निरर्थक है कि प्राचीन युग की, यहां तक कि उसके अत्यंत गौरवमय काल की भी, सभी वस्तुएं पूर्ण रूप से सराहनीय थीं और वे मानव मन एवं आत्मा की परमोच्च कोटि की उपलब्धियां थीं।

उसके बाद हमें इस अतीत की अपने वर्तमान के साथ तुलना करनी होगी और अपनी अवनति के कारणों को समझना तथा अपने दोषों और रोगों का इलाज ढूँढना होगा। अपने अतीत की महत्ता का बोध हमारे लिये ऐसा आकर्षक एवं सम्मोहक नहीं बन जाना चाहिये कि वह हमें अकर्मण्यता की ओर घसीटकर मृत्यु के मुख में ले जाये; बल्कि उसे एक नवीन और महत्तर प्राप्ति के लिए एक प्रेरणा का काम करना चाहिए।

अज्ञानपूर्ण पाश्चात्य आलोचना के विरुद्ध अपनी संस्कृति का समर्थन करने और आधुनिक युग के भीषण दबाव से इसकी रक्षा करने का साहस सबसे पहली वस्तु है, परंतु इसके साथ ही अपनी संस्कृति की भूलों को, किसी यूरोपियन दृष्टिकोण से नहीं बल्कि अपने निजी दृष्टिकोण से

स्वीकार करने का साहस भी होना चाहिये। अवनति या विकृति से संबंधित समस्त बातों को एक ओर छोड़ देने पर भी, हमारे जीवन-संबंधी सिद्धांतों और सामाजिक प्रथाओं में कुछ ऐसी चीजें हैं जो अपने-आपमें भ्रांत हैं, उनमें से कुछ एक तो समर्थन के भी योग्य नहीं हैं, वे हमारे जातीय जीवन को दुर्बल करने वाली, हमारी सभ्यता को नीचे गिराने वाली तथा हमारी संस्कृति की प्रतिष्ठा नष्ट करने वाली हैं। उन चीजों से हमें किसी प्रकार के कुतर्क के द्वारा इन्कार न करके उन्हें स्वीकार करना चाहिये। अस्पृश्यों के साथ हम जो व्यवहार करते हैं उसमें हमें ऐसी चीजों का एक ज्वलंत दृष्टांत मिल सकता है।

और फिर, हमें अपने सांस्कृतिक विचारों और सामाजिक आचारों पर दृष्टिपात करना होगा और यह देखना होगा कि कहां वे अपना पुराना भाव या अपना सच्चा अर्थ खो चुके हैं। उनमें से बहुतेरे तो आज एक मिथ्या वस्तु बन गये हैं और वे अपनी ग्रहण की गयी भावनाओं के साथ या जीवन के तथ्यों के साथ अब और मेल नहीं खाते। कुछ अन्य आचार-विचार ऐसे हैं जो अपने-आप में तो अच्छे हैं या जो अपने समय में तो लाभदायी थे तथापि आज वे हमारे विकास के लिये पर्याप्त नहीं है। इन सब का या तो कायापलट करना होगा या फिर इन्हें त्यागकर इनके स्थान पर अधिक सच्चे विचारों और अधिक उत्कृष्ट आचार-व्यवहारों की स्थापना करनी होगी। इन्हें जो नयी दिशा हमें प्रदान करनी होगी वह सदा इनके पुराने अर्थ की ही पुनरावृत्ति नहीं होगी। जिन नये क्रियाशील सत्यों की हमें खोज करनी है वे प्राचीन आदर्श के सीमित सत्य के घेरे में ही आबद्ध हों यह आवश्यक नहीं।

जहां अपने-आपमें विश्वास और अपनी संस्कृति की भावना के प्रति निष्ठा एक स्थायी एवं शक्तिशाली जीवन के लिये प्रथम आवश्यक शर्तें हैं, वहां महत्तर संभावनाओं का ज्ञान भी इनसे कुछ कम अनिवार्य नहीं। यदि हम अपने अतीत आदर्श को एक प्रेरणाप्रद संवेग का रूप न दे एक मिट्टी का धोंधा बना दें तो हम स्वस्थ और विजयी होकर नहीं बने रह सकते। हमारी सभ्यता की भाव-भावनाओं और आदर्शों को किसी प्रकार के समर्थन की आवश्यकता नहीं, क्योंकि अपने सर्वोत्कृष्ट अंशों में एवं अपने सारतत्त्व में वे शाश्वत महत्व की वस्तु थे। भारत ने उनकी जो आभ्यंतरिक एवं व्यक्तिगत खोज की वह सच्ची, शक्तिशाली और फलोत्पादक थी।

और यदि हम ऐसा करें तो हमें पता चलेगा कि पाश्चात्य रूपों से ढका हुआ उत्तमोत्तम जो कुछ भी हमारे पास आता है वह सब हमारे अपने प्राचीन ज्ञान में पहले से ही छिपा हुआ है और उसके पीछे एक अधिक महान भाव, एक अधिक गंभीर सत्य और आत्मज्ञान विद्यमान है और है अधिक उत्कृष्ट एवं आदर्श रूपायणों के लिये संकल्प करने की क्षमता। आवश्यकता केवल इस बात की है कि जिस वस्तु को हम आत्मा के अंदर सदा ही जानते आये हैं उसे जीवन में पूर्णरूपेण कार्यान्वित करें।

(भारतीय संस्कृति के आधार – क्या भारत सभ्य है? अध्याय 1,2,3 से संकलित)

सावित्री
प्रतीकात्मक उषा
पर्व 1 सर्ग 2

श्रीअरविंद

सत्यवान् की मृत्यु का दिवस आया। सावित्री विचारों के गहन क्षेत्रों में उतर पड़ी। इसका मन वर्तमान से भूतकाल के दृश्यों की तरफ उल्टी गति से चला। इसकी साध आत्मा बाल्य, कौमार्य, यौवन और उस समय के सेहीजनों को अवलोक रही थी एक दिवस में ही अपने भाग्य का एक पूरा वर्ष जीवित हो गया; मृत्यु की घोर छाया स्वर्ग नरक के साथ स्पर्धा में उतरा हुआ अनुभव हुआ ।

जब प्रभु की निकटता प्राप्त होनेवाली होती है तब अलौकिक प्रकार का जो एक अंधकार मानव के ऊपर कभी-कभी उतर आता है वह सावित्री के ऊपर भी अब उतरा।

बाहर की चेतना में से निकलकर अंतर की गहरी आत्मचेतना के साथ तदाकारता साधित करना सावित्री के लिये अब अनिवार्य बन गया। कारण, अब वह एक ऐसीसा सीमा पर पहुंची थी जहां या तो जीवन सर्वथा निरर्थक बन जाये या स्वयं अपनी आत्मा के अमर अंश में प्रबुद्धता पाकर अपने संकल्प से देह की भावी को रद्द कर डाले। क्योंकि केवल अजन्मी और अकाल आत्मा की शक्ति ही काल में हुए जन्म के ऊपर के जुए को उतार सकती है, भूतकाल के अपने बदलते रहनेवाले नामरूपों के उत्तराधिकार को लेने से इंकार कर सकती है।

हमारा वर्तमान का प्रारब्ध भूतकाल की शक्तियों की संतान है। इस भूतकाल की कर्मशृंखला की कड़ी को तोड़कर और वहां का सब कुछ भूसात् करके अपनी भावी नये सिरे से गढ़ना सावित्री के लिये अब आवश्यक बन गया था, सारे विश्व के सामने अपनी एकमात्र आत्मा को तराजू के पलड़े में रखना था, मृत्युमयी महागुहा में अपने अस्तित्व और प्रेम का दावा सिद्ध करना था, अमर्त्य मृत्यु की स्थिर दृष्टि के सामने दृष्टि को स्थिर करना था, अपनी दिगंबर आत्मा से अंतहीन रात्रि का माप लेना था।

सावित्री ने अंतिम दिवस भारी पगों से व्यतीत किये। अनेक सुखी अज्ञान हृदयों के बीच एकमात्र इसको ही काल की भीषण घड़ी का भान था। जगत् को खबर नहीं थी तो भी यह जगत् के लिये यम के सामने द्वंद्व-युद्ध में खड़ी हुई। अपने अंदर के बल के सिवाय दूसरा कोई एक भी बल इसकी सहायता के लिये नहीं था। ऊर्ध्व में देवलोक और नीचे निसर्ग की आत्मा इस महायुद्ध

के प्रेक्षक बने थे।

इसके आसपास था महावन। इसमें रहकर ही इसने अपनी आत्मा की उत्तुंगता और सीमाहीन विशालता प्राप्त की थी; इस वन में ही इसके चिदम्बर चिंतन चले थे; प्रभु को प्रतिष्ठित करने के लिये इसको अगाध अवकाश भी यहीं मिला था। यहीं इसको अलौकिक आवागमनों के बारे में जैसा होता है वैसे प्रेम का प्रथम परिचय हुआ था। मृत्यु की छाया को छुपा देनेवाले इस प्रेम ने सावित्री के अंदर अपने लिये परमपूर्ण मंदिर प्राप्त किया था। सावित्री की आत्मा विचार के मार्गों को पार करके अमर वस्तुओं की ओर उड़ रही थी। इसका आत्मस्थ संकल्प स्खलित नहीं होता था, इसका मन शुभ्र सद्भाव का सागर जैसा बन गया था और एक भी कलुषित तरंग इसमें उठती न थी। उषा के समान उल्लसित सावित्री का शरीर आनंद से आंदोलित, मौन का धाम था; वह उस पार की दिव्यताओं के सुवर्ण द्वार के समान शोभायमान था। इसके पग-पग में थी अमर लय, इसकी दृष्टि और इसका स्मित पार्थिवता में भी दैवी भावों को जगाता था, इसका परम आनंद मनुष्यों के जीवन पर अलौकिक सुन्दरता को उड़ेल रहा था। उदारता में यह थी सागर के समान या असीम आकाश जैसी, आसपास के लोगों के लिये यह आश्वासन रूप थी। इसके दर्शन से आशा जागती, इसकी ऊष्मा में सब समाते, इससे सुख-शांति प्राप्त करते। इसका दयाभाव अंतर को सहायता देता। सारे विश्व को आश्रय दे सके ऐसा पारावार था इसका प्रेम। अतृप्त प्रेम के महिमावंत देव ने इसे अपना धाम बनाया था। इसका उच्छ्वास सबको दिव्य बना देता था। इसमें आया था देवों का दैवत और महासमर्थ मौन। परम प्रेम को सावित्री में अपना सनातन सदन संप्राप्त हुआ था।

आजतक एक भी शोकरेखा इसके उज्ज्वल मार्ग में आड़े नहीं आयी थी। ऊर्ध्वलोक से आकर इसने पार्थिव जीवन में प्रवेश किया था, तो भी इसकी दृष्टि सुख भरे स्वर्गतारकों के प्रति खुली रहती थी। वहां के आनंद से परिपूर्ण सौन्दर्य की स्मृति इसमें सतेज थी। अजन्मा ओजों की निरापद मुक्ति इसकी बनी हुई थी। देवों के पगों की ताल में ताल मिलाकर यह चलती थी। स्वर्गलोकों का अध्यात्म आनंद इसकी आत्मा की स्वच्छ आरसी में प्रतिबिंबित होता था।

और सावित्री के प्रकाश में रहनेवाले तो सनातन धामों से इसके पीछे उतरकर आये हुए इसके लीला सहचर को भी मानों देखते थे। दिव्य कार्य लेकर आयी हुई इस बाला को स्वर्ग की ढाल का रक्षण मिला हुआ था। इसका बाल्य इस प्रकार एक कान्तिमती कक्षा जैसा बन गया था, इसका यौवन प्रशांत महासुख के सिंहासन पर समारूढ़ था।

परंतु आनंद अंत तक टिका नहीं रहता। अपरिहार्य हस्त ने सावित्री को भी अपनी पकड़ में लिया। सशस्त्र देवता रूप वह भी काल के जाल में फंस गयी। कोई एक संदिग्ध दैवत ने अधूरे जगत् का गर्त इसकी आत्मा से पूरने के लिये इसे आमंत्रण दिया, और जो खड्डा सबको ही उलांघना पड़ता है उसको अधिक गहरा खोदा। अवतारिणी सावित्री की सामर्थ्य को नियुक्त कार्य की दिशा

में मुड़ जाने के लिये उसने विवश किया।

सावित्री का जन्म भी इस कार्य के लिये ही हुआ था, इसीलिये ही इसने देह को अंगीकार किया था। अविद्या और मर्त्यता के सामने लड़ने के लिये और अमृतत्व का मार्ग काटकर बनाने के लिये ही इसका आगमन हुआ था। दैव के साथ जुआ प्रारंभ करके मानव आत्मा के लिये दैवी खेल में जीतना या हारना यह इसकी आत्मा के सामने महत्त्व की विचारणा का प्रश्न था। अज्ञान जगत् की आधीनता स्वीकार करके सहन करने के लिये नहीं, परंतु इसे मुक्ति का मार्ग-दर्शन कराने के लिये ही इसका जन्म हुआ था। काल के दैवताओं के हाथ नीचे की संपत्ति या इनका खिलौना बनकर रहने के लिये यह आयी न थी यह थी एक सभान शरीरधारिणी स्वयंभू शक्ति।

प्रभु की इस अंधकारभरी समस्या में यद्दच्छा के और अवश्यंभाविता के अंध नियम प्रवृत्त हैं, और वहां अध्यात्म अग्नि को अपनी ज्वाला को अतिशय ऊंचे उठाने का अवकाश नहीं होता; क्योंकि यदि यह अग्नि एक बार भी आदि ज्वाला का मिलाप साध सके तो इसके प्रत्युत्तर में आनेवाला स्पर्श सभी मापों को तोड़फोड़ डाले, अनंत के अनंत भार से पृथ्वी चूर-चूर हो जाये। परंतु कर्म का नियम देव-दानव दोनों को नियंत्रण में रखता है, शोध में निकली हुई जिंदगी को मृत्यु अटकाये रखती है, और इस प्रकार अचित् का सिंहासन सुरक्षित रहता है।

परंतु एक सावित्री ही सामने खड़ी हुई और इसने असीम ज्वाला जलाई। निर्माण के घाव के सामने इसने सिर ऊंचा किया। अतिमानस सत्ता ने इसमें अपना बीज बोया था। इसकी आत्मा ने पामरों की प्रथा का प्रत्यादेश किया।

यह एक आदिष्ट कार्य करने के लिये आयी थी, सनातन का शब्द सुनाने के लिये आयी थी। पृथ्वी के आरंभकाल से ही इसमें एक शक्ति ने कार्य करना आरंभ किया था। मृत्यु के बाद भी यह अमर शक्ति लक्ष्यों के पीछे पड़ी रहती थी। आकर चली जानेवाली यद्दच्छा के आधीन होकर यह काल में हुए अपने जन्म के उद्देश्य को छोड़ देना नहीं चाहती थी। इसीलिये अब इस अकेली का संकल्प सारे वैश्विक नियम से टक्कर लेने को सामने खड़ा हुआ। घोर दैव के चक्र को रोकने के लिये इसकी महात्मता तैयार हुई। गुप्त द्वारों पर के अद्दष्ट की टकोर से हृदय की गहराई में सोया हुआ इसका बल जाग्रत हुआ, जो मारता है और तारता भी है उस 'तत्सत्' के प्रहार को इसने अपना लिया।

कभी-कभी आत्मा को एक अद्भुत उत्तोलन अचानक प्राप्त हो जाता है और यह अनिर्वचनीय के आवत रहनेवाले अकाल संकल्प को वर्तमान बनाता है। कोई एक प्रार्थना, कोई एक उत्कृष्ट कार्य, कोई एक राजा जैसा राजकीय विचार मनुष्य की सामर्थ्य को परात्पर शक्ति के साथ संयोजित कर देता है, और फिर तो चमत्कार एक सामान्य नियम बन जाता है, एक एकाकी विचार

सर्वशक्तिमान बन जाता है।

परंतु अब तो सब कुछ प्रकृति की यंत्र परंपरा जैसा लगता है, और इन यंत्रों में मनुष्य भी एक यंत्र बन गया होता है। तो भी ज्ञान और प्रज्ञान क्रमशः आते हैं और तब प्रकृति का औजार बना हुआ मानव प्रकृति का राजा बन जाता है। इसकी आत्मा प्रकृति से अलग होकर पीछे हट जाती है और परम ज्योति का साक्षात्कार करती है, जड़-यंत्र के पीछे खड़े हुए प्रभु के दर्शन करती है।

प्रस्फुटित हुई विजयी ज्वाला के रूप में यह सत्य अब सावित्री की दृष्टि के समक्ष प्रकाशित हुआ। मनुष्य में रहनेवाले प्रभु का जय-जयकार हुआ। सावित्री के मानव स्वरूप में साक्षात् जगदंबा प्रादुर्भूत हुई, इसके जीवंत संकल्प ने निर्माणचक्र को धक्का देकर पीछे हटा दिया और अनिवार्यता के अग्रप्रयाण को अटका दिया; अर्चिष्मान योद्धा ने निवारित बन्द द्वार को बलपूर्वक उद्घाटित किया, प्रहार करके इसने मृत्यु मुख के छद्मावरण को तोड़ डाला, चेतना के और काल के बांधों को छिन्न-विच्छिन्न कर डाला।

(पर्व 01 सर्ग 3 अगले अंक में)

मूल गुजराती लेखक - पूजलाल
हिन्दी अनुवादिका – सरला शर्मा

अब सावित्री के अन्तर में परमा-जगज्जननी उदित हो उठीः
एक संजीवित चुनाव ने भाग्य के ठंडे निष्ठुर मृत मोड़ को उलट दिया,
एवं घोर परिस्थिति में आत्म-चेतना की गति को स्वीकार लिया,
अचित् घूमते कालचक्र की क्रूर गति को पीछे धकेल दिया
और भौतिक जग की अनिवार्यता की मूक यात्रा को थाम दिया।

शाश्वत शिखरों से अवतरित एक तेजस्विनी योद्धा
जिसे निषिद्ध और बन्द द्वार को बलात् खोलने की शक्ति प्राप्त हो गयी
इसने यम के मुख से उसकी मौन निरंकुश प्रभुता नोच ली
और चेतना एवं महाकाल के बंधनों की श्रृंखला तोड़ डाली।

-सावित्री पर्व 1 सर्ग 2

अनागत के पथ पर

छोटे नारायण शर्मा

(गतांक से आगे)

(पिछले अंक का अंतिम परिच्छेद –

हम देखते हैं श्रीअरविन्द की इस शताब्दी के भीतर आदमी साधारण चूल्हे की आग से चलकर विद्युताग्नि को पार कर सौर ऊर्जा के धरातल पर पांव रख चुका है। परन्तु इन अग्नियों के मूल में है वह अग्निशक्ति जिनसे ये सभी जीवित और उद्भासित हैं-तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्। चेतना के इस आग्नेय पंथ का वही शेष पर्व है सम्पूर्ण चेतना का पर्व जो सम्पूर्ण शक्ति का पर्व भी है। श्रीअरविन्द के शब्दों में यह अतिमानसी चेतना न केवल प्रज्ञादृष्टि है, प्रज्ञावीर्य भी है। इसी से आप्लावित मनुष्य की चेतना संकल्प और संसिद्धि के बीच की खाई को पाट सकेगी। आज तक आदमी के जीवन के मर्मभूत सपने सत्य के सपने, प्रकाश और अमृतत्त्व के सपने मात्र सपने इसीलिये बने रहे कि वह जिस चेतना के धरातल पर खड़ा है, वहां संकल्प है सिद्धि नहीं, सपना है उसका जाग्रत सत्य नहीं। परन्तु अतिमानसी चेतना में दोनों की एक साथ सहवेदना होती है, दोनों सहचर सत्य हैं-वेदोभयं सह। मनुष्य को जो योग आज दिया जा रहा है वह है मनोमय भूमिका से अतिमानस की ओर उसके उन्नयन और उन्मेष का योग)

केवल अपनी शक्ति से आदमी इसे सिद्ध नहीं कर सकता। अभीप्सा अवश्य उसकी रही है और युग युगांत से प्रवाहित उसकी अभीप्सा की यही धारा विश्वयोग का गंगा प्रवाह है। आदमी की अभीप्सा का प्रत्युत्तर देती है भागवत कृपा और इस द्विविध क्रिया से ही संभव है यह जीवन की सर्वांग सिद्धि का योग आज का विश्व संकट जहां मनुष्य को अभीप्सा के लिये प्रेरित करता है वहां श्रीमाँ का रूपायण है इस अभीप्सा के प्रति भगवान् के प्रत्युत्तर का रूपायण।

अतः योग का प्रारंभ होता है अभीप्सा से, श्रीमाँ के प्रति अपने-आपको खोल देने से हम अपने प्रकट रूप में जो कुछ हैं वह सब यदि उन जगन्माता के चरणों में खोलकर धर दें तो उनकी शक्ति और चेतना हमारे भीतर उतरती और हमारी अपूर्णता को धीरे-धीरे मिटाती पूर्णता के पंथ पर हमें अग्रसर करती है। श्रीअरविन्द ने कहा था कि जो श्रीमाँ के प्रति खुले हुए हैं, वे हमारा योग कर रहे हैं। वे ही जगज्जननी हैं साधना और साधना करने वाली महाशक्ति जो व्यक्ति की चेतना में उतरतीं और सिद्धि के पंथ में उसे आगे बढ़ा ले जाती हैं।

अभीप्सा और प्रतिकूल वस्तुओं का त्याग तथा समर्पण इस योग के त्रिविध सूत्र हैं। उपाय है श्रीमाँ को बराबर याद करते जाना और सब कुछ उनको समर्पित करते चलना। माताजी ने योग की परिभाषा करते हुए कहा था, 'Remember and Offer' याद करो और समर्पण करते चलो।

हमने देखा है कि संसार के असंख्य लोग जीवन की प्रताड़नाओं के रहते हुए भी मुक्ति अथवा त्राण का उपाय नहीं करते। अर्जुन के साथ कुरुक्षेत्र के मैदान में लाख लाख योद्धा खड़े थे लेकिन युद्ध और शांति का प्रश्न, विनाश और रक्षा का प्रश्न, कुलधर्म और मर्यादा के नष्ट होने का प्रश्न केवल अर्जुन के हृदय को मथित कर रहा था और सभी योद्धा लड़ने आये थे, मरने-मारने आये थे। जीवन की प्रकृत भूमि में साधारण भाव से ये सभी शूरमा मृत्यु के सामूहिक पर्व में शामिल हो जाने के लिये कुरुक्षेत्र के मैदान में खड़े थे। मृत्यु और जीवन की पहेली मर्मांतक प्रश्न बनकर केवल अर्जुन के हृदय में बज रही थी। अकेले वही सोच रहा था कि वह एक विराट पाप कर्म में हाथ बँटाने जा रहा है। जरा और मृत्यु की विश्वपीड़ा अकेले किसी सिद्धार्थ को सोने नहीं देती, उसे राजमहल से निकाल साधना के कठिन वनपथ में ढकेल ले जाती है। कारण है अंतरात्मा का जागरण और इस जागरण का अर्थ होता है जीवन के रथ पर स्वयं भगवान् का सारथी बन आसीन हो जाना। यह सौभाग्य केवल अर्जुन को मिलता है। हजारों लोग तो केवल युद्ध के तमाशे में शामिल थे, अर्जुन में प्रकट हुई थी इस तमाशे की मर्म कथा और सभी मरने आये थे, अर्जुन योग के लिये आया था मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चित् यतति सिद्धये ।

आज मनुष्य के माथे पर सर्वनाश की जो काली घटा छायी हुई है, विश्व विध्वंस के जिस संकट काल में हम जी रहे हैं, उसकी दुर्वह पीड़ा प्रत्येक आदमी अनुभव कर रहा है। अकेले अर्जुन का जो संकट था आज विश्व आयाम ग्रहण कर चुका है। उस संकट काल में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था, तुम्हें हम उत्तम रहस्य इसलिये दे रहे हैं कि तुम हमारे भक्त हो, सखा हो- भक्तोऽसि मे सखा चेति। आज वही भगवान् सबों के मित्र बनकर 'सुहृदं सर्वभूतानां' प्रकट हैं। वे आसीन हैं आज विश्वजीवन के रथ पर सारथि बनकर वे ही आज मानव समाज को पूर्णयोग का दीक्षादान कर रहे हैं। इसीलिये इस योग का एक विश्व विन्यास है। मानवजाति को यह योग दीक्षा दी जा रही है।

इस दृष्टिकोण से सर्वथा नवीन है योग का यह पक्ष। आज तक हम सुनते आये हैं कि जो साधु हैं, साधक हैं वे जमात बांध कर नहीं चला करते, उनकी गोष्ठी नहीं होती साधु न चलहिं जमात। परन्तु श्रीअरविन्द का योग सामाजिक प्रतिफलन का योग है, क्योंकि यह व्यक्ति विशेष का मुक्तिपथ नहीं होकर स्वयं जीवन के परितर्पण का पंथ है, उसकी दिव्य संसिद्धि का पंथ है।

व्यक्ति योगसिद्ध तब समझा जाता है जब वह जीवन की बहुमुखीन वृत्तियों को आत्म चेतना की गहराई अथवा ऊंचाई में समेट लेता है और अपने-आपमें डूब जाता है, समाधिस्थ हो जाता है। वहां वह एक है, अखंड है। शरीर की भूख प्यास, प्राण की वृत्तियां, मन के संकल्प-विकल्प चेतना के उस अखंड प्रसार में डूब जाते हैं।

परन्तु स्वयं जीवन का यह योग, जिसमें शरीर भी शामिल है समाज भी शामिल है, कैसा होगा?

साधारणतः जब श्रीअरविन्द के योग की हम चर्चा करते हैं तब हम योग की उस माध्यमिक धारा की चर्चा करते हैं जिसमें योग मानव चेतना में दिव्य पिपासा बनकर उदय होता और व्यक्ति को उस भूमि पर उठा ले जाता है जो तृप्ति का देश है। अज्ञान में ज्ञान का उदय, अविद्या में विद्या का अवतरण, मर्त्य जीवन में अमरत्व का स्वाद इसी प्रकार अतिथि बनकर आता और फिर चला जाता है। चाहे वह श्रीकृष्ण का 'वृजिनं संतरिष्यसि' हो अथवा बुद्ध का निर्वेद भूमि में पदार्पण व ईसामसीह का पितृ प्रेम, ये सारी चीजें आयात की वे वस्तुएं हैं, वैसी इंपोर्टेड आर्टिकल्स हैं जिनका उपयोग बहुधा अकेले और कभी-कभी कुछ संगी साथियों में बांटकर कर लिया जाता है, फिर वैसे ही दूसरे व्यक्ति की प्रतीक्षा में दुनिया बैठकर ऊंघने लग जाती है जो कभी आयेगा, अवतार लेगा और इसी प्रकार की इम्पोर्टेड कोई चीज उनके बीच लाकर उपस्थित कर देगा। क्या श्रीअरविन्द का योग भी ऐसी ही कोई आयात की हुई वस्तु है? शायद उसका उपयोग कुछ अधिक लोग करेंगे। आखिर संभवामि युगे युगे जो श्रीकृष्ण ने कहा था उसका मतलब कुछ इसी तरह का संकेत देता नहीं है क्या? आदमी अपनी तरफ से इस क्रम में पूर्णविराम कहां लायेगा?

लेकिन जिस परम्परा में संभवामि युगे युगे कहा गया है उसी परम्परा का एक दूसरा पाठ भी है। यह है दशावतार की कथा। दस ही अवतार तब क्यों ? युगे युगे के इस क्रम पर पटाक्षेप कैसा? तब क्या युगों का यह क्रम समाप्त हो जायेगा अथवा दसवें अवतार सृष्टि विन्यास में कोई ऐसा परिवर्तन ले आयेंगे जिससे न तो धर्म की ग्लानि होगी, न असुर अभिमानी बढ़ेंगे जिसके कारण प्रभु को बार-बार अवतार लेना पड़ता है।

श्री अरविन्द ने कहा है कि पार्थिव जीवन ही दिव्य जीवन में रूपांतरित हो जायेगा। यह विश्वव्यापी अंधेरी रात में किसी रोशनी का वितरण नहीं, यह है सूर्योदय का आश्वासन। जो महाकाश का प्रकाश पिंड है उससे स्वयं रजनी की काया को पार्थिव जीवन के जड़ावरण को नये ज्योतिरुच्छ्वास से दिव्य बना देना है।

श्रीअरविन्द का योग जड़ शरीर का योग है। इसलिये वे प्रकाश को वहां ले गये हैं जो मृत्यु की जन्मभूमि है, अचेतना का देश है और अचेतना, जड़ता ही मृत्यु है।

श्री अरविन्द ने जब देहत्याग किया था, तब कहा गया था कि वे मृत्यु देवता के अंधेरे विवर में प्रवेश कर गये हैं, वे बलशाली सिंह को पराजित करने के लिये उसी के विवर में चले गये हैं।

और पीछे माताजी ने कहा कि यह काम वे बड़े शक्तिशाली रूप से कर रहे हैं। जड़ शरीर का बोझ उतार फेंकने से उनकी क्रियाशक्ति अत्यधिक बढ़ गयी है।

फिर यह विवर कहां है? मृत्यु की जन्मभूमि कैसी है? हम विज्ञान से जरा पूछें।

समझा जाता है ऊर्जा के प्रचंड विस्फोट से महाशून्यता में जड़ सृष्टि का तब प्रारंभ हुआ जब महाकाश में आग्नेय पिंड बिखर गये, ग्रह नक्षत्र रूप लेने लग गये, नीहारिकाएं और तारामंडल रूप लेने लग गये। जड़ सृष्टि का यह विस्फोट अकल्पनीय रूप से सुविशाल कर्म था, समय की दृष्टि से और प्रसार की दृष्टि से भी। इस हतबुद्धिकर विशाल सृष्टि में हमारा सूर्य और उसका परिवार जिसमें हमारी पृथ्वी भी शामिल है -एक बिन्दु रूप से अपना अस्तित्व रखते हैं। सूर्य ऊर्जा का ज्वलंत पिंड है जिसके इर्द-गिर्द जड़ परमाणुओं के विभिन्न संघात न्यूनाधिक रूप गरम या ठंडे पिंड बनकर घूम रहे हैं। प्रारंभ में यह नितांत जड़ता, निर्जीवता का प्रसार है, प्राण स्पंद का कहीं लेश नहीं। इस निर्जीव विश्व में प्राण का प्रथम उन्मेष अमीबा (Amoeba) रूप से हुआ है। जो जड़ परमाणु था, वह प्राणिक कैसे बना, इसके लिये कहा जाता है, पहले वायरस का विकास हुआ, फिर जैव प्लाज्मा फिर जीवंत कोषाणु। यह कोष ही प्राण की उद्गम भूमि है और मृत्यु भी जो नितांत जड़ता में पहले डूबी हुई थी, यहीं प्रथमतः दिखलायी पड़ती है, इसीलिये यह मृत्यु की जन्मभूमि भी है। जहां पहले जड़ता ही जड़ता थी, जो पहले नितांत निष्प्राणता का प्रसारित देश था, वहां प्राण का प्रथम उदय मृत्यु के देश में प्राण का जन्म लेना था। निष्प्राण जड़ता ही सबका आधार है, इसीलिये यह प्रसारित विश्व मृत्यु के देवता की सृष्टि है; मृत्यु ही इसका शासक है, नियंता है, मृत्यु से ही सभी पैदा होते और उसी के अंधेरे विवर में यह भूत सृष्टि जाकर सो जाती है। प्रत्यक्ष दृष्टि में आने वाला हमारा यही वह ज्ञान है जो इस मर्त्यभूमि का स्वदेशी ज्ञान कहा जा सकता है। मनोमय चेतना के ऊंचे-से-ऊंचे शिखर पर भी यह ज्ञान जो वस्तुतः मूलभूत अज्ञान ही है, आसन जमाकर बैठा हुआ है। इसीलिये जब कबीर कहते हैं:

सांझ भये दिन वीति वै, चकवी दीन्हों रोय।
चल चकवा वा देश को, जहां रैन ना होय ॥

तो वे इस विसंगति का बखान करते हैं जो सचेतन जीव अनुभव करता और पीड़ा की इस भूमि से निकल उस देश में जाना चाहता है जहां दुःख कष्ट नहीं है, जहां रात नहीं होती। आज तक की सारी आध्यात्मिक यात्रा का यही सारांश है क्योंकि सारी जीव-विसृष्टि का आधार है - निश्चेतना जो मृत्यु का देश है। जीवंत कोषाणुओं के जड़- विभिन्न संघटनों से बनी जीव - विसृष्टि फूल के उस बगीचे के समान है जिसके हर फूल के साथ मृत्यु का बज्रकीट भी पैदा होता है और फूल को एक विशेष अवधि से अधिक नहीं जीने देता। जब तक सृष्टि सामान्य रूप से प्राणिक होती है तब तक यह कर्म सामान्य रूप से चलता रहता है। प्रश्न यह तब बन जाता है जब आदमी पैदा होता है। आदमी है प्राण विसृष्टि में मनोमय चेतना का विकासमान प्राणी और मनोमय चेतना ही है अखंड अतिमानसी चेतना की गौण - विभूति।

इसके साथ ही जगती है जड़ विश्व में सत्य की वह पिपासा जो झांक कर देखना चाहती है उस मुहूर्त्त के भी उस पार जब शून्यता में जड़ ऊर्जा का प्रथम विस्फोट हुआ। जब अलग-अलग परमाणु विखंडित हो गये और जो महतो महीयान था, वह अणोरणीयान में परिणत हो गया। यह विभाजन, यह विखंडन एक साथ ही परम सत्य की आत्म-निष्कृति, उसका आत्म-यज्ञ भी था और विश्व विसृष्टि में भिन्न-भिन्न रूप ग्रहण करने की योजना का सूत्रपात भी जड़ता की इस प्रसारित भूमि में जब प्राण का पदार्पण होता है तभी वायरस के रास्ते से चलकर वह प्राण रस से स्पंदित प्लाज्मा बन जीवंत कोषाणु तक बन जाता है जो जीव - विसृष्टि का प्रथम आधार है। इन्हीं कोषाणुओं से बनता है कीट-पतंग का शरीर भी और किसी देश के प्रेसीडेंट का शरीर भी। बुद्ध अथवा बुद्धदेव का भी यही जड़ आधार है। अमीनोएसिड नामक अम्ल के तारतम्य से ही भिन्न-भिन्न जीवों के शरीर बनते हैं। सांप बिच्छू और मनुष्य के शरीरों का निर्धारक द्रव्य यही है। केवल इसी अम्ल की क्रम व्यवस्थित प्रक्रिया है जो मनुष्य को कोई दूसरे पशु पंछी बन जाने से रोके रखती है।

लेकिन वह प्रक्रिया ऐसी क्यों है? उसको अनुशासित कौन-सी शक्ति करती है और यह शक्ति आणविक धरातल पर जगकर काम करने लगे तो वह अम्ल जो केवल मानव प्रोटीन बनाता है जो बाप को बेटे से और बेटे को पोते से बांध, पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलने वाली इस गाड़ी को लोक से उतरने नहीं देता - मानवी रूप से बांधे रखता है, कुछ और करने लगेगा। जैसे जीव-जंतुओं के आचार-व्यवहार में, आदतों में, जीवन की प्रणाली और छंद में फर्क है, उसी प्रकार वह शरीर में फर्क ला सकता है, उसमें मौलिक परिवर्तन कर सकता है, बूढ़ा होने की प्रक्रिया को बदल दे सकता अथवा मिटा दे सकता है, मरने की यादगारी को उसकी चेतना से निकालकर उसको ऐसी सजग चेतना दे सकता है जहां प्राण देह-बद्ध वर्तमान सीमाओं को भुलाकर निरवधि विस्तारभाव में पहुंच जाये। किन्तु अचेतन सूक्ष्मता के उस अंधे लोक में चेतना का प्रदीप लेकर जाया कैसे जा सकता है? फिर आधारशिला भी तो वहीं है। वहां प्रकाश यदि नहीं पहुंचा, वह यदि नहीं बदलता तो दुनिया भी इसी अंधे आधार पर चलती रहेगी? सृष्टि का रूपांतर सपने से अधिक और कुछ नहीं होगा और जागरणशील आत्माएं वैकुण्ठ और वृंदावन की खोज अन्यत्र ही करती रहेंगी।

श्री अरविन्द और माताजी को उस पाताल में भी जाना ही होगा जहां यह आधारशिला आरोपित है। श्री अरविन्द अपनी 'देवता की तपस्या' (A God's Labour) नामक कविता में कहते हैं-

A Voice cried go where none have gone
Dig deeper deeper yet
Till you reach the grim foundation stone
And knock at the keyless gate.

सुनो, वहां जाओ, न जहां कोई जा सका अभी तक
चलो खोदते तुम पहुंचो जाकर गंभीरतम तल तक
वहां जहां आधारशिला निर्मम प्रचंड आरोपित
दो थपकी दरवाजे पर जो रहा अंध औ' आवृत्त ।

और भी
I saw that a falsehood was planted deep
At the very root of things
Where the grey sphinx guards God's riddle sleep
On the dragon outspread wings.

देखा मैंने वहां गहन में एक अनृत आरोपित
सभी वस्तुओं की जड़ में था वही सुदृढ़ स्थापित
जहां रहस्यमयी निद्रा में परम देव सोता है
और सिंहिका का उस पर प्रचंड पहरा होता है।

जड़द्रव्य के योग का मतलब है जड़ता की इसी पातालपुरी में देव-चेतना का जागरण। चेतना का वहां उदय होना होगा। इसीलिये सूर्यदेव को वहां उतरना ही चाहिये। रूपान्तरण इसके बिना सिद्ध नहीं हो सकता और यह दुस्साहसिक तपस्या सबसे कठिन तपस्या है।

(क्रमशः – अगले अंक में अंतिम कड़ी)

आश्रम-गतिविधियाँ

1 जनवरी – नव वर्ष का स्वागत

सावित्री का अखंड पाठ
मध्य रात्रि में समाधि क्षेत्र पर 'अभीप्सा का प्रकाश' और ध्यान
श्रीमाँ के संगीत का प्रसारण
नए वर्ष के कैलेंडर का वितरण

12 जनवरी राष्ट्रीय युवा दिवस

संध्या 4.55 से श्रीमाँ के संगीत का प्रसारण
5.00 से डॉ रमेश बिजलानी द्वारा 'The Futuristic Vision of Sri Arvind'
5.15 से संगीतमय प्रस्तुति – कलाकार आदित्य, बसुधरा, अरुणिमा, देवांश, जान्हवी, मिथु एवं मोनिदिपा

20 जनवरी - स्वर्गीय अनिल जौहर का 94वां जन्मदिन

संध्या 7.00 से प्रेमशिला और मिनाती दीदी द्वारा संगीत प्रस्तुति

26 जनवरी - गणतन्त्र दिवस एवं देवी करुणामयी की 7वीं पुण्य तिथि

प्रातः 10 बजे टीवी पर गणतन्त्र दिवस कार्यक्रम का प्रसारण

संध्या 6.45 से आकाशवाणी के कलाकारों द्वारा संगीतमय प्रस्तुति

सरोद – श्री दिनेश असलम खान, तबला – श्री गुलाम गौस भारती

9 फ़रवरी 'गुरुबानी'

संध्या 6.45 से डॉ अलंकार सिंह एवं उनके सहयोगियों द्वारा

12 फरवरी आश्रम स्थापना दिवस

संध्या 4.45 बजे प्रशिक्षार्थियों के चित्र की प्रदर्शनी

विशेष अतिथि अंजलि जैपुरिया

संध्या 6:30 बजे समाधि क्षेत्र में 'अभीप्सा का प्रकाश'।

संध्या 6:45 से तारा दीदी का वाचन और डॉ मिथु पल द्वारा संगीत प्रस्तुति

21 फरवरी श्रीमाँ का 146वां जन्मदिन

संध्या 3.45 से आश्रम के युवाओं द्वारा शारीरिक कौशल का प्रदर्शन

संध्या 6:30 बजे समाधि क्षेत्र में मार्च पास्ट एवं 'अभीप्सा का प्रकाश'

संध्या 6.45 से 'The Mother's Symbol' पुस्तक का लोकार्पण, एवं

आश्रम के गायक-गायिकाओं द्वारा संगीतमय प्रस्तुति

तारा दीदी का वाचन – 'The Supramental Descent'

28 फरवरी अनिल जौहर की 10वीं पुण्यतिथि

संध्या 7.00 से प्रेमशिला और मिनाती दीदी द्वारा संगीत प्रस्तुति

हिमांशु दत्ता द्वारा बांसुरी वादन, तबले पर श्री फतेह सिंह गंगानी

तारा दीदी का वाचन

29 फरवरी 'स्वर्णिम दिवस' समारोह

संध्या 6:00 बजे समाधि क्षेत्र में 'अभीप्सा का प्रकाश' ।

संध्या 6:40 बजे आश्रम के गायक-गायिकाओं द्वारा संगीतमय प्रस्तुति

तारा दीदी का वाचन – 'The Supramental Descent'

साप्ताहिक गतिविधियां

(SAAM पुस्तकालय के नजदीक कमरा 005 में)

मंगलवार – डॉ अपर्णा रॉय द्वारा 'आंतरिक रूप से जीना'
(Living Within का हिन्दी रूपान्तरण) संध्या 5.30 से 6.30
- श्री प्रशांत खन्ना द्वारा 'वेदान्त पर' प्रातः 11:30 से 12:30

वृहस्पतिवार – श्री प्रशांत खन्ना द्वारा 'सावित्री' पर प्रातः 11.30 से 12.30

शुक्रवार – श्री प्रशांत खन्ना द्वारा 'गीता' पर प्रातः 11.30 से 12.30

ध्यान कक्ष में संध्या 7 से 7.30 –

शुक्रवार - डॉ रमेश बिजलानी की वार्ता
शनिवार - डॉ अपर्णा रॉय की वार्ता

रविवारीय वार्ताएं – ध्यान कक्ष में – प्रातः 10 से 11.30

7 जनवरी
डॉ अपर्णा रॉय - श्रीमाँ का रूपान्तरकारी योग (The Mother's Transformative Yoga)
भजन – डॉ मैत्रेयी कर्क

14 जनवरी
डॉ श्रीविद्या - पूर्ण योग में पारिवारिक संबंधों के प्रति दृष्टिकोण
भजन – सुश्री प्रेमशीला

21 जनवरी
डॉ मिथु पाल - The Past Was Useful in Its Own Time (Based on Mother's prayer dated 1 April 1914 in Prayers and Meditations)
भजन – सुश्री मोनिदिपा घोष

28 जनवरी
डॉ. मंकुल गोयल - Renunciation
भजन – सुश्री सौम्या नारायण

4 फरवरी
डॉ अपर्णा राय – मानव जीवन के विकास में दुख की भूमिका
भजन – डॉ मिथु पाल

11 फ़रवरी
डॉ मंकुल गोयल – The Synthesis of the Discipline of Knowledge
भजन - सुश्री बसुंधरा मुंशी

18 फरवरी
डॉ मिथु पाल - Concentration and Expansion
भजन – डॉ मिथु पाल

25 फरवरी
डॉ रमेश बिजलानी – The Mental View of the Supramental
भजन – सुश्री सौम्या नारायण

२९ फरवरी, १९५६
बुधवार के सम्मिलित ध्यान के समय

आज की शाम, ठोस और भौतिक भागवत उपस्थिति तुम्हारे बीच उपस्थित थी। मेरा रूपाकार जीवन्त स्वर्ण का हो गया था जो विश्व से बड़ा था, और मैं एक बृहत् तथा विशालकाय सोने के दरवाजे के सामने खड़ी थी जो जगत् को भगवान् से अलग कर रहा था।

जैसे ही मैंने दरवाजे की ओर देखा, मैंने चेतना की एक ही गति में जाना और संकल्प किया कि "समय आ गया है", और दोनों हाथों से एक बहुत बड़े सोने के हथौड़े को उठाकर मैंने एक प्रहार किया, दरवाजे पर मात्र एक प्रहार और दरवाजा टुकड़े-टुकड़े हो गया।

तब अतिमानसिक 'प्रकाश', 'शक्ति' और 'चेतना' तीव्र गति से धरती पर उतरी और अबाध गति से बह निकलीं।